॥ श्रीहरिः ॥

169

भक्त बालक

(संक्षिप्त भक्त-चरित-माला १)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरि ॥

निबन्ध-सूची

॥ श्रीहरिः ॥
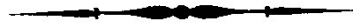
गोविन्द

गोवर्धन बड़ा सुन्दर गाँव है। गाँवमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी ही बस्ती अधिक है। गाँवके बीचमें एक मन्दिर है, जिसमें श्रीनाथजी महाराजकी बड़ी ही सुन्दर मूर्ति विराजमान है। उनके चरणोंमें नूपुर, गलेमें मनोहर वनमाला और मस्तकपर मोरमुकुट शोभित हो रहा है। घुँघराले बाल हैं, नेत्रोंकी बनावट मनोहारिणी है और पीताम्बर पहने हुए हैं। मूर्तिमें इतनी सुन्दरता है कि देखनेवालोंका मन ही नहीं भरता। मन्दिरके पास ही एक गरीब ब्राह्मणका घर था। ब्राह्मण था गरीब, परन्तु उसका हृदय भगवद्भक्तिके रंगमें रँगा हुआ था। ब्राह्मणी भी अपने पति और पतिके भी परमपति परमात्माके प्रेममें रत थी। उसका स्वभाव बड़ा ही सरल और मिलनसार था। कभी किसीने उसके मुखसे कड़ा शब्द नहीं सुना। पिता-माताके अनुसार ही प्रायः पुत्रका स्वभाव हुआ करता है। इसी न्यायसे ब्राह्मण-दम्पतिका पुत्र गोविन्द भी बड़े सुन्दर स्वभावका बालक था। उसकी उम्र दस वर्षकी थी। गोविन्दके शरीरकी बनावट इतनी सुन्दर थी कि लोग उसे कामदेवका अवतार कहनेमें भी नहीं सकुचाते थे।

गोविन्द गाँवके बाहर अपने साथी सदानन्द और रामदासके साथ खेला करता था। एक दिन खेलते-खेलते संध्या हो गयी। गोविन्द घर लौट रहा था तो उसने मन्दिरमें आरतीका शब्द सुना। शंख, घण्टा, घड़ियाल और झाँझकी आवाज सुनकर गोविन्दकी भी मन्दिरमें जाकर तमाशा देखनेकी इच्छा हुई और उसी क्षण वह दौड़कर नाथजीकी आरती देखनेके लिये मन्दिरमें चला गया। नाथजीके दर्शन कर बालकका मन उन्हींमें रम गया। गोविन्द इस बातको नहीं

समझ सका कि यह कोई पाषाणकी मूर्ति है। उसने प्रत्यक्ष देखा कि एक जीता-जागता मनोहर बालक खड़ा हँस रहा है। गोविन्द नाथजीकी मधुर मुसकानपर मोहित हो गया। उसने सोचा, 'यदि यह बालक मेरा मित्र बन जाय और मेरे साथ खेले तो बड़ा आनन्द हो।' इतनेमें आरती समाप्त हो गयी। लोग अपने-अपने घर चले गये। पुजारी भी मन्दिर बंद करके चले गये। एक गोविन्द रह गया, जो मन्दिरके बाहर अँधेरेमें खड़ा नाथजीकी बाट देखता था। गोविन्दने जब चारों ओर देखकर यह जान लिया कि कहीं कोई नहीं है, तब उसने किवाड़ोंके छेदसे अंदरकी ओर झाँककर अकेले खड़े हुए श्रीनाथजीको हृदयकी बड़ी गहरी आवाजसे गद्गद-कण्ठ हो प्रेमपूर्वक पुकारकर कहा—'नाथजी! भैया! क्या तुम मेरे साथ नहीं खेलोगे? मेरा मन तुम्हारे साथ खेलनेके लिये बहुत छटपटा रहा है। भाई! आओ, देखो, कैसी चाँदनी रात है, चलो, दोनों मिलकर मैदानमें गुल्ली-डंडा खेलें। मैं सच कहता हूँ, भाई! तुमसे कभी झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा।'

सरलहृदय बालकके अन्तःकरणपर आरतीके समय जो भाव पड़ा, उससे वह उन्मत्त हो गया। परमात्माके मधुर और अनन्त प्रेमकी अमृतमयी मलयवायुसे गोविन्द प्रेममग्न होकर मन्दिरके अंदर खड़े हुए उस भक्त-प्राण-धन गोविन्दको रो-रोकर पुकारने लगा। बालकके अश्रुसिक्त शब्दोंने बड़ा काम किया। '**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' (गीता ४। ११) की प्रतिज्ञाके अनुसार नाथजी मन्दिरमें नहीं ठहर सके। भक्तके प्रेमावेशने भगवान्‌को खींच लिया। गोविन्दने सुना, मानो अंदरसे आवाज आती है—'भाई! चलो, आता हूँ, हम दोनों खेलेंगे!'

सरल बालकका मधुर प्रेम भगवान्‌को बहुत शीघ्र खींचता है। बालक ध्रुवके लिये चतुर्भुजधारी होकर वनमें जाना पड़ा। भक्त

प्रह्लादके लिये अनोखा नरसिंहवेष धारण किया और व्रज-बालकोंके साथ तो आप गौ चराते हुए वन-वन घूमे। आज गोविन्दकी मतवाली पुकार सुनकर उसके साथ खेलनेके लिये मन्दिरसे बाहर चले आये! धन्य प्रभु! न मालूम तुम मायाके साथ रमकर कितने खेल खेलते हो? तुम्हारा मर्म कौन जान सकता है? मामूली मायावीके खेलसे ही लोग भ्रममें पड़ जाते हैं, फिर तुम तो मायावियोंके सरदार ठहरे! बेचारी माया तो तुम्हारे भक्त-चंचरीकसेवित चरण-कमलोंकी चेरी है, अतएव तुम्हारे खेलके रहस्यको कौन समझ सकता है? इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तुम्हें अपने भक्तोंके साथ खेलना बहुत ही प्यारा लगता है। इसलिये तुम धन्नाके साथ गायें दुहते फिरे थे और इसीलिये आज बालक गोविन्दके पुकारते ही उसके साथ खेलनेको तैयार हो गये!

नाथजी हँसते हुए गोविन्दके पास आकर खड़े हो गये, गोविन्दने बड़े प्रेमसे उनका हाथ पकड़ लिया। आज गोविन्दके आनन्दका ठिकाना नहीं है, वह कभी नाथजीके मुखकमलको देखकर मतवाला होता है, तो कभी उनके कर-कमलोंका स्पर्श कर अपनेको धन्य मानता है। कभी उनके नुकीले नेत्रोंको निहारकर मोहित होता है, तो कभी उनके सुरीले शब्दोंको सुनकर फिर सुनना चाहता है। गोविन्दके हृदयमें आनन्द समाता नहीं। बात भी ऐसी ही है। जगत्का समस्त सौन्दर्य जिसकी सौन्दर्यराशिका एक तुच्छ अंश है, उस अनन्त और असीम रूपराशिको प्रत्यक्ष प्राप्त कर ऐसा कौन है जो मुग्ध न हो!

नये मित्रको साथ लेकर गोविन्द गाँवसे बाहर आया। चन्द्रमाकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी, प्रियतमकी प्राप्तिसे सरोवरोंमें कुमुदिनी हँस रही थी, पुष्पोंकी अर्धविकसित कलियोंने अपनी मन्द-मन्द सुगन्धसे समस्त वनको मधुमय बना रखा था।

मानो प्रकृति अपने नाथकी अभ्यर्थना करनेके लिये सब तरहसे सज धजकर भक्तिपूरित पुष्पांजलि अर्पण करनेके लिये पहलेसे तैयार थी। ऐसी मनोहर रात्रिमें गोविन्द नाथजीको पाकर अपने घर-बार, पिता-माता और नींद भूखको सर्वथा भूल गया। दोनों मित्र बड़े प्रेमसे तरह-तरहके खेल खेलने लगे।

गोविन्दने कहा था कि मैं झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा; परंतु विनोदप्रिय नाथजीकी मायासे मोहित होकर वह इस बातको भूल गया। खेलते-खेलते किसी बातको लेकर दोनों मित्र लड़ पड़े। गोविन्दने क्रोधमें आकर नाथजीके गालपर एक थप्पड़ जमा दिया और बोला कि 'फिर कभी मुझे खिझाया तो याद रखना मारते-मारते पीठ लाल कर दूँगा।' सूर्य-चन्द्र और अनल-अनिल जिसके भयसे अपने-अपने काममें लग रहे हैं, स्वयं देवराज इन्द्र जिसके भयसे समयपर वृष्टि करनेके लिये बाध्य होते हैं और भयाधिपति यमराज जिसके भयसे पापियोंको भय पहुँचानेमें व्यस्त हैं, वही त्रिभुवननाथ आज नन्हें-से बालक भक्तके साथ खेलते हुए उसकी थप्पड़ खाकर भी कुछ नहीं बोलते। धन्य है!

नाथजी रोने लगे और बोले—'भाई गोविन्द! तुमने कहा था न कि मारूँगा नहीं, फिर मुझे क्यों मारा?' नाथजीकी इस बातको सुनकर और उनको रोते देखकर गोविन्दका कलेजा भर आया। उसने दौड़कर नाथजीके आँसू पोंछे, उन्हें अपने गले लगा लिया और बोला, 'भाई! रो मत, तू मुझे बहुत ही प्यारा लगता है, तेरी आँखोंमें आँसू देखते ही मेरा कलेजा फटता है।' दोनों फिर खेलने लगे। रात अधिक हो गयी। भगवान्‌ने यह सोचकर कि इसके माता-पिता बड़े चिन्तित होंगे, अपनी मायासे गोविन्दके हृदयमें घर जानेके लिये प्रेरणा की। गोविन्दने कहा, 'नाथजी! बड़ी देर हो गयी है, मैं घर जाता हूँ, अब कल फिर खेलेंगे।' नाथजीने अनुमति दी। गोविन्द

घर चला गया और अनाथोंके एकमात्र नाथ श्रीनाथजी अपने मन्दिरमें चले गये।

प्रतिदिन इसी प्रकार खेल होने लगा। गोविन्द इस नयन-मनमोहन नये मित्रको पाकर पुराने दोनों मित्रोंको भूल गया। एक दिन श्रीनाथजी महाराज खेलते-खेलते गोविन्दको दाँव न देकर भगे। गोविन्द भी पीछे-पीछे दौड़ा। नाथजी महाराज मन्दिरमें जाकर घुस गये। मन्दिरका द्वार बंद था, अतएव गोविन्द अंदर नहीं जा सका, नाथजीका अन्याय समझकर वह मन्दिरके बाहर खड़ा होकर उन्हें प्रणयकोपसे खरी-खोटी सुनाने लगा। भक्तमालके रचयिता रीवाँनरेश रघुराजसिंहजी लिखते हैं—

भगि मंदिर भीतर कृष्ण गये, तब गोबिंद भीतर जान लगो।
जब पंडन मारि निकासि दियो, तब बाहर ही अति कोप जगो॥
महि ठोंकत डंड, प्रचारत गारि दे, तू कढ़िहैं कबलों न भगो।
इत बैठे रहौंगो मैं तेरे लिये, नहि दाँव दियो अहै पूरो ठगो॥

मन्दिर खुलते ही गोविन्द अंदर घुस गया और डंडेसे नाथजीकी मूर्तिको पीटकर बोला कि 'फिर कभी भागेगा?' पुजारियोंने हा! हा! करके गोविन्दको पकड़ा और मार-पीटकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया, इससे उसका प्रेम-प्रकोप और भी बढ़ा और वह कहने लगा, 'नाथजी! तैने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, दाँव न देकर भाग आया और अब मुझे अपने आदमियोंसे मरवाकर बाहर निकलवा दिया, अच्छा कल देखूँगा, जबतक तुझे इसका बदला न दूँगा तबतक पानी भी नहीं पीऊँगा।' यों कहकर गोविन्द रूठकर चला गया और जाकर गोविन्दकुण्डपर बैठ गया। इधर मन्दिरमें भोग तैयार होनेपर पुजारीको प्रत्यादेश हुआ कि 'तुमलोगोंने मेरे जिस भक्तको मारकर बाहर निकाल दिया है, वह जबतक नहीं आवेगा तबतक मेरा भोग नहीं लग सकता। उसके अंगपर जो मार

पड़ी है वह सब मेरे शरीरपर लगी है।' पुजारीको क्या पता था कि भक्त और भक्तवत्सल अभिन्न होते हैं? खैर! पुजारीजी बड़े हैरान हुए, दौड़े और खोजते-खोजते कुण्डपर गोविन्दको पाकर कहने लगे, 'भाई! चलो, नाथजीने तुम्हें बुलाया है, वे तुमसे हार मानते हैं और फिर तुम्हारे साथ खेलनेका वादा करते हैं।' ब्राह्मणके वचन सुनकर गोविन्दने कहा, 'जाता तो नहीं; वही मेरे पास आता और जब मैं उसे खूब पीटता, तभी वह सीधी राहपर आता, पर अब जब कि उसने हार मान ली है, तब तो चलो, चलता हूँ।' यों कहकर गोविन्द मन्दिरमें गया और विजय-गर्वसे हँसता हुआ बोला—'क्यों नाथजी! फिर कभी करोगे ऐसी चातुरी? अच्छा हुआ जो तुमने हार मानकर मुझे बुला लिया, नहीं तो ऐसा करता जो जन्मभर याद रखते।' गोविन्दने यह बातें कह तो दीं, परंतु जब नाथजीका मुख उदास देखा तो उसके सरल हृदयमें बड़ी वेदना हुई। वह बोला—'भाई! तुमने अभीतक भोग क्यों नहीं लगाया? तुम्हारे मुखको उदास देखकर मेरे प्राण रोते हैं। भाई! फिर कभी तुम्हें नहीं मारूँगा, तुम्हारी उदासी मुझसे सही नहीं जाती। मैं तुमसे अब नहीं रूठूँगा, तुम राजी हो जाओ और भोग लगाओ।'

मन्दिरके द्वार बंद हो गये। नाथजी प्रत्यक्ष होकर बोले—'भाई! तुम भी तो भूखे हो। आओ, दोनों मिलकर खायँ।' नाथजीका प्रसन्न मुख देखकर गोविन्दका मन-सरोज भी खिल उठा। दोनों हँसने लगे। आनन्दकी ध्वनिसे मन्दिर भर गया। गोविन्द, गोविन्दके हाथों बिक गये।

अकस्मात् द्वार खुला, गोविन्दने दिव्य चक्षु प्राप्त किये और उसे सर्वत्र केवल नाथजी ही दीखने लगे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

मोहन

एक छोटे-से गाँवमें एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। ब्राह्मणी अत्यन्त दरिद्रा थी, उसके एक छोटे-से पुत्रके अतिरिक्त कोई भी अपना नहीं था, ब्राह्मणीको दो-चार भले घरोंमें भीख माँगनेसे जो कुछ मिल जाता, उसीसे वह अपना और अपने शिशु पुत्र मोहनका उदर-निर्वाह करती। किसी दिन यदि बहुत कम भीख मिलती तो ब्राह्मणी स्वयं भूखी रहकर बच्चेको ही कुछ खिला-पिलाकर उसे हृदयसे लगा संतोषसे सो जाती। गाँवमें ऐसे लोग भी थे, जिनकी अवस्था बहुत अच्छी थी; परंतु गरीब-असहाय ब्राह्मणीकी किसीको कोई परवा न थी। महलोंमें रहनेवाले अमीरोंको बुरी तरहसे अनाप-शनाप वस्तुएँ पेटमें भरते रहनेके कारण मन्दाग्नि हुई रहती है, उन्हें पूरा-सा अन्न भी पचता नहीं, परंतु गरीबोंकी दशाका ध्यान उन्हें क्यों होने लगा? देशमें न मालूम कितने असहाय और गरीब नर-नारी भूखकी ज्वालासे तड़प-तड़पकर मर जाते हैं, उनकी दशापर कौन दृष्टिपात करता है? पर जिसके कोई नहीं होता, उसके भगवान् होते हैं, वह विश्वम्भर किसी तरह गरीबकी टूटी झोपड़ीमें भी उसका पेट भरनेके लिये कुछ दाने जरूर पहुँचा देते हैं।

ब्राह्मणीके बालक मोहनकी उम्र छ: वर्षकी हो गयी। ब्राह्मणसंतान है; कुछ पढ़ाना ही चाहिये, परंतु किस तरह पढ़ाया जाय! गाँवके अधिकांश लोगोंकी दृष्टिमें तो ब्राह्मणी गरीब होनेके कारण घृणास्पद थी। ब्राह्मणीने एक दूसरे गाँवमें मोहनके पढ़ानेका प्रबन्ध किया। एक दिन वह उसको साथ ले दूसरे गाँवके गुरुजीके पास जाकर रोने लगी, गुरुजीको दया आ गयी। उन्होंने बालकको पढ़ाना स्वीकार किया। मोहन पढ़नेके लिये जाने लगा। गाँव दो कोस था, परंतु दरिद्रा ब्राह्मणीके बालकके लिये सवारी कहाँसे आती? मोहन पैदल

ही आया-जाया करता! यद्यपि उस समय गुरुके घरोंमें बालकोंके रहनेकी प्रथा थी, परंतु मोहन बहुत छोटा होनेके कारण न तो वह गुरुगृहमें रहना ही चाहता और न माताको ही रातके समय अपने इकलौते बच्चेको आँचलमें छिपाकर सोये बिना चैन पड़ती। रास्तेमें थोड़ी-सी दूर सुनसान जंगल पड़ता था। मोहनको उसीमेंसे होकर जाना पड़ता। सुबह सूर्योदयके समय ही वह जाता और संध्याको लौटते-लौटते अँधेरा छा जाता। इससे मोहनको जंगलमें बड़ा डर लगता।

एक दिन गुरुजीके घर कोई उत्सव था, इससे मोहनको वहाँसे लौटनेमें कुछ देर हो गयी। कृष्णपक्षके कारण जंगलमें अन्धकार घना हो गया था, मोहन रास्तेमें बहुत डरा, जंगली पशुओं और सियारोंकी आवाज सुनकर वह थर-थर काँपने लगा। ब्राह्मणी भी देर होनेके कारण उसको ढूँढ़ने चली गयी थी, डरते-काँपते हुए अपने लालको गोदी लेकर घर ले आयी। मोहनने कुछ शान्त होनेपर मातासे कहा, 'माँ! मैं रोज जंगल होकर आता-जाता हूँ, मुझे वहाँ बहुत डर लगता है, आज तुम नहीं पहुँचती तो न मालूम मेरी क्या दशा होती? दूसरे लड़कोंके साथ तो उनके नौकर जाते हैं, जो उन्हें सँभालते हैं, क्या मेरे लिये एक नौकर नहीं रखोगी?' बालककी सरल वाणी सुनकर अपनी दरिद्रताका ध्यान आते ही ब्राह्मणीकी आँखें डबडबा आयीं। ब्राह्मणीने बहुत धीरज रखा, परंतु शेषतक रख नहीं सकी। वह रोकर कहने लगी, 'बेटा! अपने दुःखकी दशा तुझको कैसे सुनाऊँ, हमलोग बहुत ही गरीब हैं, तेरे लिये नौकर रखनेको मेरे पास पैसा कहाँ है? माँकी आँखोंमें आँसू देखकर मोहन भी रो पड़ा। उसने कहा,' माँ! तू रोती क्यों है? तुझे रोते देखकर मुझे भी रोना आता है। माँ! क्या हमारे और कोई नहीं है?' मोहनके सरल मर्मभेदी प्रश्नसे ब्राह्मणीका हृदय व्यथासे भर गया, पृथ्वी मानो

पैरोंके नीचेसे खिसकने लगी, धीरज टूटने लगा, परंतु उसे तुरंत यह खयाल आया कि ईश्वर तो अनाथनाथ हैं, क्या वह हमारे नहीं हैं? यह स्मृति होते ही ब्राह्मणीके हृदयमें बल आ गया, आँसू अकस्मात् सूख गये; वह कहने लगी, 'बेटा! है क्यों नहीं, गोपाल है।' बच्चेने पूछा, 'माँ! गोपाल मेरे क्या लगते हैं?' स्नेहमयी ब्राह्मणीके मुँहसे निकल गया; 'बेटा! गोपालभाई तेरा बड़ा भाई है।' बालकने कहा, 'माँ! वह कहाँ रहते हैं? मैंने तो उन्हें कभी नहीं देखा!' ब्राह्मणीका हृदय भगवत्-प्रेमसे भर गया था। जब मनुष्य सब ओरसे सर्वथा निराश होकर भगवत्की शरणागतिपर विश्वास कर उसीकी ओर ताकता है, तब उसे तुरंत ही उधरसे आश्वासन और आश्रय मिल जाता है। उस अव्यक्त आश्रयको प्राप्त करते ही उसके हृदयमें बल, बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास स्वयमेव होने लगता है। भगवत्-प्रेमसे हृदय भर जाता है। ब्राह्मणी मानो निर्भ्रान्त चित्तसे कहने लगी—

'बेटा! मेरा वह गोपाल सभी जगह है, जल-स्थल, अनल-अनिल, आकाश-पाताल, फल-फूल, समुद्र-सरिता—सभीमें वह रहता है। जगत्में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो। परंतु वह सहजमें दीखता नहीं है, जब उसे देखनेके लिये कोई बहुत ही व्याकुल होता है तभी वह दीखता है। एक समय वृन्दावनमें गोपबालाओंके व्याकुल होनेपर उन्हें वह दीख पड़ा था। एक बार पाँच वर्षके बालक ध्रुवको दिखायी दिया था। जो एक बार उसे देख लेता है, वह तो उसकी सुन्दरता और स्वभावपर सदाके लिये मोहित हो जाता है।'

मोहन—माँ! मेरा गोपालभाई कभी अपने घर नहीं आता?

ब्राह्मणी—आता क्यों नहीं? वह तो सदा यहीं रहता है।

मोहन—क्या तुमने उसे कभी देखा है?

ब्राह्मणी—ना! मैंने उसे नहीं देखा, मैं उसके लिये कभी व्याकुल नहीं हुई। परंतु मैं जानती हूँ कि व्याकुल होनेपर वह अवश्य दर्शन देता है।

मोहन—तो तू व्याकुल क्यों नहीं होती? ऐसे सुन्दर रूप और सुन्दर स्वभाववालेको देखे बिना तुझसे कैसे रहा जा सकता है? माँ! मैं तो उसे देखे बिना नहीं रहूँगा। मुझे बता, मैं उसके लिये कैसे व्याकुल होऊँ?

ब्राह्मणी—बेटा! जैसे भूख लगनेपर तू भोजनके लिये व्याकुल होता है, जैसे प्यास लगनेपर जलकी पुकार मचाने लगता है, जैसे आज जंगलमें तू मुझे पानेके लिये घबरा रहा था, ऐसे ही व्याकुल होकर पुकारनेसे वह अवश्य आता है। उस दिन मैंने तुझको एक कहानी सुनायी थी न, क्या तू उसे भूल गया? पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीको जब दुष्ट दुःशासन सभामें नंगी करने लगा, तब उसने व्याकुल होकर पुकारा था; उसकी पुकार सुनते ही मेरा गोपाल वहाँ आ गया था।

मोहन—क्या वही मेरा गोपाल भाई है?

ब्राह्मणी—हाँ बेटा! वही है। पुकारते ही वह आता है और सारे संकटोंको हर लेता है।

मोहन—तो माँ! मैं क्या करूँ? कैसे पुकारूँ?

ब्राह्मणीने अटल विश्वासके साथ कहा, 'सुन! तू जिस जंगलसे होकर जाता है, उसी जंगलमें तेरा गोपालभाई रहता है। उसे हृदयसे पुकारना, तेरी व्याकुल पुकार सुनते ही वह आकर तेरे साथ हो जायगा!'

सरल विश्वासी बालकने दूसरे दिन वनमें प्रवेश करते ही इधर-उधर ताककर पुकारा, 'भाई! गोपालभाई!! तुम कहाँ हो? आओ, मुझे डर लगता है!' बालकको सुनायी दिया, मानो कोई कह रहा है, 'हाँ यहीं हूँ आया!' मीठी आवाज सुनते ही बालकको ढाढ़स हो गया, उसका भय भाग गया, कुछ ही दूर चलनेके बाद उसने देखा कि उसीकी-सी उम्रका एक छोटा नयन-मन-हारी सुकुमार श्यामसुन्दर ग्वाल-बालक वनके वृक्षसमूहोंमेंसे निकलकर उसके साथ खेलने लगा, प्यारसे बातचीत करने लगा और हाथ पकड़कर साथ-साथ

चलने लगा। गोपालके आते ही मोहनका सारा दुःख दूर हो गया। मोहनने घर आकर मातासे सारा हाल सुना दिया। ब्राह्मणी भगवान्‌की दया समझकर रो पड़ी। उसने सोचा—'जिस दयामयने बालक ध्रुवकी पुकार सुनकर उसे दर्शन दिया था, वही मेरे बच्चेकी पुकारपर आ गया हो तो क्या आश्चर्य है!'

कुछ समय बाद गुरुके पिताका देहान्त हो गया, श्राद्धका आयोजन हुआ। श्राद्धके लिये सभी विद्यार्थी गुरुजीको कुछ-न-कुछ भेंट देंगे। ब्राह्मणीके मोहनने भी सरलतासे गुरुजीसे पूछा— 'गुरुजी! मुझे क्या आज्ञा देते हैं, मैं क्या लाऊँ?' गुरु महाराजको ब्राह्मणीकी अवस्थाका पता था। उन्होंने कहा, 'बेटा! तुझको कुछ भी नहीं लाना होगा।' उसने कहा, 'नहीं गुरुजी! जब सभी लड़के लावेंगे तब मुझे भी कुछ लानेकी आज्ञा दीजिये।' बालकके बार-बार आग्रह करनेपर गुरु महाराजने कह दिया—'एक लोटा दूध ले आना।' मोहन संतुष्ट होकर घर चला आया। उसने मातासे कहा—'माँ! कल गुरु महाराजके पिताका श्राद्ध है, सभी लड़के कुछ-न-कुछ सामान ले जायँगे। मुझे गुरुजीने सिर्फ एक लोटा दूध ही ले आनेके लिये कहा है; अतएव तुम कुछ दूध खरीद लाना।' ब्राह्मणीका घर तो मानो दरिद्रताका निवासस्थान था। अश्वत्थामाकी माताको भी एक दिन बच्चेको भुलानेके लिये दूधके बदले आटा मिले हुए पानीसे काम निकालना पड़ा था। ब्राह्मणी बोली, 'बेटा! घरमें तो एक कानी कौड़ी भी नहीं है, दूध कहाँसे लाऊँगी? माँगकर लानेके लिये छोटी-सी लुटिया भी तो घरमें नहीं है!' मोहनने रोकर कहा, 'माँ! तब क्या होगा। मैं गुरुजीको मुँह कैसे दिखलाऊँगा?' माताने दृढ़ भरोसेसे कहा, 'बेटा! गोपालभाईसे कहना, वह चाहेगा तो दूधका प्रबन्ध अवश्य कर देगा!' बालक प्रसन्न हो गया। प्रात:काल गुरुके घर जाते समय जंगलमें सदाकी भाँति ज्यों ही उसे गोपालभाई मिले, त्यों ही मोहनने

कहा, 'भाई! आज मेरे गुरुजीके पिताका श्राद्ध है, उन्होंने एक लोटा दूध माँगा है, माँने कहा है कि गोपालभाईसे कहना, वह तुझे ला देगा। सो भाई! मुझे अभी दूध लाकर दो।' गोपाल बड़े प्यारसे बोले, 'भाई! मुझे पहलेसे ही इस बातका पता है, देखो, मैं दूधका लोटा भरकर साथ ही लाया हूँ, तुम इसे ले जाओ।' मोहनने गोपालभाईसे दूधका लोटा ले लिया। आज उसके आनन्दका पार नहीं है, सफलतापर किसे आनन्द नहीं होता है। राज्यके पिपासुको जो आनन्द राज्यकी प्राप्ति होनेपर होता है; वही आनन्द एक बच्चेको मनचाहा मामूली खिलौना मिलनेसे होता है। वास्तवमें खिलौने दोनों ही हैं। यथार्थ आनन्द न राज्यमें है और न मामूली खिलौनेमें है, वह तो अपने अंदर ही है, जो मनोरथ पूर्ण होनेपर मनमें एक बार बिजलीकी तरह चमक उठता है और दूसरा मनोरथ उत्पन्न न होनेतक झलमलाता रहता है। पर यहाँ तो गोपालके दिये हुए दूधकी प्राप्तिमें कुछ विलक्षण ही आनन्द था। इस आनन्दका स्वरूप वही भाग्यवान् जानता है, जिसको भगवत्कृपासे इसकी प्राप्ति होती है। हमलोगोंके लिये तो यह कल्पनासे बाहरकी बात है।

मोहन हँसता हुआ दूधका छोटा-सा लोटा लेकर गुरुजीके समीप जा पहुँचा। लड़कोंकी लायी हुई सामग्रियोंको गुरुजीके नौकर उनके पास ले जाकर उन्हें दिखा-दिखाकर अलग रख रहे थे। बालकने समझा कि मेरे दूधकी भी बारी आवेगी, परंतु उस जरा-सी लुटियाकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। बालकने उदास होकर गुरुजीसे कहा, महाराज! मैं भी दूध लाया हूँ।' गुरुजी बड़ी-बड़ी सामग्रियोंकी देखभाल कर रहे थे। उन्होंने बालककी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। गरीबोंके श्रद्धा-प्रेम-पूरित उपहारका स्वाद तो प्रेमके भूखे भगवान् ही जानते हैं। इससे वही उसका सम्मान भी करते हैं। सुदामाके चावलोंकी कनी, अछूत भिलनीके बेर, करमाकी खिचड़ी

और विदुरके शाक-पातके स्वादका अनुभव भगवान्‌को ही था, इसीसे उन्होंने प्रसन्नतासे इनका भोग लगाया था और इसीलिये उन्होंने घोषणा की है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

'प्रेमी भक्त मुझे शुद्ध प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि जो कुछ भी अर्पण करता है, मैं उसे प्रेमार्पित उपहारका प्रेमसहित साक्षात् भोजन करता हूँ।' सामग्रियोंके बाहुल्यका कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व है प्रेमका; भगवान् श्रीकृष्णके आतिथ्यके लिये कौरवोंने कम तैयारी नहीं की थी, परंतु भगवान्‌ने कहा कि—

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्‌गता वयम्॥

(महाभारत)

'भोजन या तो प्रेम हो वहाँ किया जाता है या विपद् पड़नेपर किसीके भी यहाँ करना पड़ता है। यहाँ प्रेम तो तुममें नहीं है और विपत्ति मुझपर नहीं पड़ी है। इससे मैं तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं करूँगा।' अस्तु!

जब मोहनने कई बार गुरुसे कहा, तब गुरुजीने अवज्ञाके साथ झुँझलाकर एक नौकरसे कहा, 'जरा-सी चीजपर यह छोकरा कितना चिल्ला रहा है, मानो इसने हमें निहाल कर दिया। दूध किसी बर्तनमें लेकर हटाओ इस आफतको जल्दी यहाँसे।' अपमानसे बालकके मुखपर विषादकी रेखा खिंच गयी! गरीब क्या करता! रोने लगा।

भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र है, वह कब किस सूत्रसे क्या करना चाहते हैं, किसीको कुछ भी पता नहीं लगता। नौकरने दूधको कटोरेमें उँड़ेला, कटोरा भर गया, पर दूध पूरा नहीं हुआ; उसने एक

गिलास उठाया, वह भी भर गया, पर दूध ज्यों-का-त्यों रहा, आखिर एक बाल्टीमें डालना आरम्भ किया, वह भी भर गयी। तब नौकरने घबराकर गुरु महाराजके पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया। श्राद्धके लिये बहुत-से विद्वान् ब्राह्मण एकत्र हो रहे थे, इस आश्चर्य-घटनाको सुनकर सभी वहाँ दौड़े आये। देखते हैं, एक छोटे-से लोटेमें दूध भरा है, पास ही एक बाल्टी और कई बर्तनोंमें दूध छलक रहा है। गुरुजीने नौकरसे कहा, 'जरा मेरे सामने तो डालो।' नौकरने एक दूसरे बड़े बर्तनमें लुटियाका दूध उँड़ेलना आरम्भ किया, बर्तन भर गया, पर लुटिया खाली नहीं हुई। फिर दूसरा भी उससे बड़ा बर्तन रखा गया, वह भी बात-की-बातमें भर गया। दूध मानो द्रौपदीका चीर ही हो गया—

डारत-डारत कर थक्यो, चुक्यो न लुटिया-दूध॥

तब तो गुरु महाराज और ब्राह्मण-मण्डलीके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। गुरुने पूछा, 'बेटा! तू दूध कहाँसे लाया था?' बालकने सरलतासे कहा—'मेरा गोपालभाई वनमें रहता है, उसीने मुझे दिया था।' गुरुने कहा, 'बच्चा! गोपालभाई कौन है?'

मोहनने कहा, मेरा भाई है, 'मेरी माँने कहा था कि तू उससे जो चाहे सो माँग लेना, वह दीनोंका नाथ है, पतितोंको पवित्र करता है, दु:खियोंको अपनाता है, निराधारका आधार है, व्याकुल होकर पुकारते ही आता है, जो चाहो सो देता है।'

बालककी बात सुनकर गुरुका हृदय भर आया। गुरुने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया, घड़ीभर पहले जिससे घृणा थी, वही अब अत्यन्त आदरका पात्र हो गया! जिसको गोपाल अपनाते हैं, उसे कौन नहीं अपनाता। उलटे भी सीधे हो जाते हैं। विष भी अमृत बन जाता है—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

ब्राह्मण-मण्डली भोजन करनेके लिये बैठी, आज श्राद्धके भोजनमें मोहनके लाये हुए दूधकी खीर बनी थी। खाते-खाते ब्राह्मण अघाते नहीं थे! आजकी खीरका स्वाद कुछ अनोखा ही था। क्यों न हो, जिस प्रसादका एक कण पानेके लिये ब्रह्मादि देव सदा तरसते हैं, वही आज श्राद्ध-भोज्यान्नके रूपमें सबको प्राप्त था। ब्राह्मणोंका मन तो नहीं भरा, परंतु उस महाप्रसादकी प्राप्तिसे वे सुर-मुनि-दुर्लभ पदको पाकर सदाके लिये तृप्त हो गये। ब्राह्मणके पितरोंके तरनेमें तो आश्चर्य ही कौन-सा था?

ब्राह्मण-मण्डली बालकको स्नेहार्द्र-हृदयसे आशीर्वाद देकर लौट गयी। अन्तमें गुरुदेवने अपने सब छात्रोंको साथ लेकर भोजन किया। मोहनको भी आज वहीं भोजन करना पड़ा। संध्या हो गयी और सब लड़के अपने-अपने घर चले गये। गुरुदेवने गोपालभाईके प्यारे मोहनको रख लिया था। सबके जानेके बाद उससे बोले, 'बेटा! मैं तेरे साथ चलता हूँ, तेरे गोपालभाईके दर्शन मुझे भी जरूर कराने पड़ेंगे।' मोहनने कहा, 'चलिये, अभी मेरे साथ वनमें। मेरा गोपालभाई तो पुकारते ही आता है।' गुरुने बालकको गोदमें उठा लिया और दोनों वनमें पहुँचे। बालकने वहाँ जाते ही पुकारा, 'गोपालभाई! आओ, आज इतनी देर क्यों करते हो?' बदलेमें उसे सुनायी दिया, 'आज तो तुम अकेले नहीं हो, फिर मुझे क्यों बुलाते हो?' मोहनने कहा, 'भाई! मेरे गुरुजी तुम्हें देखना चाहते हैं, जल्दी आओ।' भक्तकी प्रेमभरी पुकार सुनकर भगवान् नहीं ठहर सकते। तुरंत नव-नील-नीरद श्यामसुन्दर प्रकट हो गये। बालकने कहा, 'भाई आ गये। गुरुदेव! देखो तो गोपालभाई कितना सुन्दर है!' गुरुजीको एक विस्मयजनक प्रकाशके सिवा और कुछ भी नहीं दिखायी दिया, उन्होंने कहा, 'कहाँ है? मुझे तो इस उजियालेके सिवा और कुछ भी नहीं दीखता।' बालकने कहा, 'यह क्या बात है? गोपालभाई! तुम

यह क्या खेल कर रहे हो?' उत्तर मिला, 'भाई! मैं तुम्हारे पास आता हूँ, तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध है, उसमें प्रेम भरा है, तुम्हारा साधन-समय पूर्ण हो गया है, परंतु तुम्हारे गुरुदेव अभी दर्शनके अधिकारी नहीं हुए। इन्होंने जो प्रकाश देखा है, वही इनके लिये बहुत है। इसीसे यह कल्याण-मार्गपर अग्रसर हो सकते हैं।' यह वीणा-विनिन्दित वाणी गुरुदेवने भी सुनी। उनके हृदयका रुद्ध द्वार खुल गया, हृदयकी मायाका बाँध टूट गया, प्रेमका सागर उमड़ पड़ा। गुरुदेव गद्‌गद होकर बोले, 'नाथ! तुम्हारे दिव्य प्रकाशने मेरे हृदयके घोर अन्धकारको हर लिया और तुम्हारी वाणीने मुझे तुम्हारे दिव्य धामके दर्शन करा दिये। अब मैं हृदयमें तुम्हें देख रहा हूँ। प्रभो! मैं यही चाहता हूँ कि मेरी सदा यही दशा बनी रहे।' मोहन महान् आनन्दसे छका मुसकरा रहा था।

थोड़ी देरमें गुरुदेवपर भी कृपा हुई। करुणावरुणालय, सौन्दर्यकी राशि, प्रेमके भण्डार, उदारचूडामणि, अनूप रूपशिरोमणिके प्रत्यक्ष दर्शन कर गुरु महाराज सदाके लिये कृतकृत्य हो गये।

× × × ×

मोहनको साथ लेकर गुरुदेव ब्राह्मणीके पास आये। देखते हैं तो वहाँ 'गोपालभाई' माताकी गोदमें बैठे मानो जननीकी स्नेहसुधाका पान कर रहे हैं। माताको बाह्य ज्ञान नहीं है। उसके आनन्दाश्रुओंकी अजस्र धारासे गोपालभाईका समस्त शरीर अभिषिक्त हो गया है। गुरु और शिष्य इस दृश्यको देखकर आनन्दसागरमें डूब गये!*

बोलो भक्तिमती ब्राह्मणी, पवित्र भक्त मोहन और उसके प्यारे 'गोपालभाई' की जय!

---

* स्वामी श्रीविवेकानन्दजीने लड़कपनमें अपनी धायसे एक कथा सुनी थी। स्वामीजीके शिष्य एम० सी० फैंकी महोदय लिखते हैं कि इस कथाका उनके जीवनपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उसी कथाके आधारपर यह गाथा लिखी गयी है।

—लेखक

धन्ना जाट

भगवान्‌की भक्ति सभी जातियोंके सभी मनुष्य कर सकते हैं, जिसकी चित्त-वृत्तिरूपी सरिताका प्रवाह भगवत्-रूपी परमानन्दके महासागरकी ओर बहने लगे, वही भक्तिका अधिकारी है और उसीपर भक्तभावन भगवान् प्रसन्न होते हैं।

भक्त धन्नाजी जाट थे, उन्होंने विद्याध्ययन नहीं किया था, शास्त्रोंका श्रवण भी वे नहीं कर सके थे; परंतु उनका सरल हृदय अनुरागसे भरा था। जगत्‌में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं, जिसके हृदयमें प्रेमका बीज न हो, अभाव है उसपर संत-समागमरूपी सुधाधाराके सिंचनका, इसी कारणसे उस बीजमें अंकुर उत्पन्न नहीं होता और यदि कहीं उत्पन्न होता है तो वह प्रतिकूल वातावरणके कारण वृद्धिको प्राप्त होकर पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर जगत्‌को सुख पहुँचानेके बहुत पहले ही नष्ट हो जाता है। सत्संग-सुधासे सदा सिंचन होता रहे, भगवन्नामरूपी अनुकूल वायु हो और दृढ़ श्रद्धा-विश्वासरूपी छायासे सुरक्षित हो तो एक दिन वह विशाल अमरवृक्ष बनकर अखिल विश्वको अपनी सुगन्धसे और मधुर 'अमियमय' फलोंसे सुखी एवं परितृप्त कर सकता है।

भक्तवर धन्नाजीका प्रेमबीज बहुत छोटी अवस्थामें ही संत-सुधा-समागमसे जीवनी-शक्ति प्राप्त कर चुका था। धन्नाजीके पिता खेतीका काम करते थे, पढ़े-लिखे न होनेपर भी उनका हृदय सरल और श्रद्धा-सम्पन्न था। वे सदा अपनी शक्तिके अनुसार संत, भक्तों, महात्माओंकी सेवा किया करते थे। उस समय न तो आजकलकी भाँति अतिरिक्त बुद्धिवादके रोगका प्रचार था और न भण्ड-तपस्वियोंका ही भारत-भूमिपर विशेष

भार था। इससे सरलतापूर्वक साधु-सेवा होनेमें कोई विशेष बाधा नहीं थी। धन्नाजीके पिताके यहाँ भी समय-समयपर अच्छे-अच्छे संत-महात्मा आया करते थे।

धन्नाजीकी उम्र उस समय पाँच सालकी थी, एक दिन एक भगवद्भक्त साधु ब्राह्मण उनके घर पधारे। ब्राह्मणने अपने हाथों कुएँसे जल निकालकर स्नान किया, तदनन्तर सन्ध्या-वन्दनादि नित्यक्रिया करनेके बाद झोलीमेंसे भगवान् श्रीशालग्रामजीकी मूर्ति निकालकर उसे स्नान कराया और तुलसी, चन्दन, धूप, दीपादिसे उसकी पूजा कर उसके प्रसाद लगाकर स्वयं भोजन किया। धन्नाजी उस भक्तिनिष्ठ ब्राह्मणकी सब क्रियाएँ कौतुकसे देख रहे थे। बालकका सरल स्वभाव था, कुछ देर साधु-संग हुआ, धन्नाके मनमें भी इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि मेरे पास भगवान्‌की मूर्ति हो तो मैं भी इसी तरह उसकी पूजा करूँ। बालक जैसी बात देखते हैं वैसा ही वे करना भी चाहते हैं। धन्नाने भी सरल हृदयकी स्वाभाविक ही मन प्रसन्न करनेवाली मीठी वाणीसे ब्राह्मणदेवके पास जाकर कहा—'पण्डितजी! तुम्हारे पास जैसी भगवान्‌की मूर्ति है, वैसी एक मूर्ति मुझे दो तो मैं भी तुम्हारी ही तरह पूजा करूँ।' ब्राह्मणने पहले तो कुछ ध्यान नहीं दिया, परंतु बालक धन्नाने जब बारम्बार रोकर गिड़गिड़ाकर उसे बेचैन कर दिया, तब बला टालनेके लिये एक काले पत्थरको उठाकर उसे दे दिया और कहा कि 'बेटा! यह तुम्हारे भगवान् हैं; तुम इन्हींकी पूजा किया करो।' धन्नाको मानो यही गुरुदीक्षा मिल गयी। इसी अल्पकालके सत्संग और सरल भक्तिके प्रतापसे बालक धन्नाजी प्रभुको अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न करनेमें समर्थ हुए। सत्संगका माहात्म्य भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं उद्धवजीसे कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥
सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ॥
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः॥
केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥
यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः।
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद् यत्नवानपि॥

× × × ×

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः॥

(श्रीमद्भा० ११। १२। १—९, १४, १५)

'हे उद्धव! समस्त संगोंसे छुड़ानेवाले सत्संगद्वारा जिस प्रकार मैं पूर्णरूपसे वश होता हूँ, उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म,

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम्॥
सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ॥
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः॥
केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥
यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः।
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद् यत्नवानपि॥

× × × ×

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः॥

(श्रीमद्भा० ११। १२। १—९, १४, १५)

'हे उद्धव! समस्त संगोंसे छुड़ानेवाले सत्संगद्वारा जिस प्रकार मैं पूर्णरूपसे वश होता हूँ, उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म,

वेदाध्ययन, तपस्या, त्याग, अग्निहोत्र, कुआँ, बावली खुदवाना और बाग लगवाना, दान-दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, मन्त्र, तीर्थयात्रा, नियम और यम आदि अन्यान्य सब साधनोंसे नहीं होता। भिन्न-भिन्न युगोंमें दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्योंमें राजसी-तामसी प्रकृतिके वैश्य-शूद्र-स्त्री एवं अन्त्यज आदि जातियोंके अनेक मनुष्य केवल सत्संगके प्रभावसे मेरे परमपदको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् , जाम्बवान् , गज, जटायु , तुलाधार वैश्य, व्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ और यज्ञपत्नियाँ एवं ऐसे ही अन्यान्य अनेक जन केवल सत्संगके प्रभावसे अनायास ही मेरे दुर्लभ पदको प्राप्त हुए हैं। देखो, गोपिका, यमलार्जुन, गौ, कालिय नाग एवं व्रजके अन्यान्य मृग, पक्षी और जड, तृण, तरु, लता, गुल्म आदि सब केवल सत्संगके प्रभावसे अनायास ही मुझे पाकर कृतार्थ हुए हैं। उक्त अज्ञानी और जडोंमेंसे किसीने वेद नहीं पढ़े, ऋषि-मुनियोंकी उपासना नहीं की, न कोई व्रत रखा और न कोई तप किया। हे उद्धव! इसीसे कहते हैं कि योग, ज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्या, स्वाध्याय आदिके द्वारा यत्न करनेपर भी मैं दुर्लभ हूँ , केवल भक्ति और सत्संग ही ऐसा साधन है जिससे मैं सुलभ होता हूँ। इसलिये हे मित्र उद्धव! तुम श्रुति, स्मृति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य और श्रुत—सब छोड़कर सब शरीरधारियोंके आत्मारूप एकमात्र मुझको भक्तिपूर्वक अपना आश्रय बनाओ। मेरी शरणमें आनेसे तुम भयसे छूट जाओगे।' अस्तु!

बालक धन्नाके आनन्दकी सीमा नहीं है, वह अपने भगवान्‌को कभी मस्तकपर रखते हैं, कभी छातीसे लगाये घूमते हैं। धन्नाकी पूजाका ठाट बढ़ चला। धन्नाने तमाम खेल-कूद छोड़ दिया, वह रात रहते ही उठकर स्नान करने लगे। तदनन्तर भगवान्‌को स्नान

कराकर धन्नाजी चन्दनके बदलेमें नयी मिट्टी लाते, उससे भगवान्‌के तिलक करते। तुलसीदलकी जगह किसी भी वृक्षके हरे पत्ते भगवान्‌पर चढ़ा देते। बड़े प्रेमसे पूजा करके भक्तिभरे हृदयसे साष्टांग दण्डवत् करते। माता जब खानेको बाजरेकी रोटी देती, तब धन्नाजी उस रोटीको भगवान्‌के आगे रखकर आँखें मूँद लेते। बीच-बीचमें आँखें खोलकर यह देखते जाते कि अभी भगवान्‌ने भोग लगाना शुरू किया या नहीं, फिर थोड़ी देरके लिये आँखें बंद कर लेते। इस तरह बैठे-बैठे जब बहुत देर हो जाती, तब वह देखते कि भगवान्‌ने अबतक रोटी नहीं खायी, तब उन्हें बहुत दुःख होता और वह बारम्बार हाथ जोड़कर बालकोचित सरल स्वभाव और सरल वाणीसे अनेक प्रकार विनयानुरोध करते। इसपर भी जब वह देखते कि भगवान् किसी प्रकार भी भोग नहीं लगाते, तब वह निराश होकर यह समझते कि भगवान् मुझसे नाराज हैं, इसीसे मेरी पूजा और भोग स्वीकार नहीं करते, परन्तु भगवान् भूखे रहें और मैं खाऊँ, यह कैसे हो सकता है।' यह विचारकर वह रोटी जंगलमें फेंक आते और भूखे रह जाते। दूसरे दिन फिर इसी तरह करते। इस प्रकार जब कई दिन अन्न-जल बिना बीत गये; तब धन्नाजीका बल एकदम घट गया, शरीर सूख गया, चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रही। शारीरिक क्लेशकी उन्हें इतनी परवा नहीं थी जितना उन्हें इस बातका दुःख था कि ठाकुरजी मेरी रोटी नहीं खाते। इसी मार्मिक दुःखके कारण उनकी आँखोंसे सर्वदा आँसुओंकी धारा बहने लगी।

अब तो भगवान्‌का आसन हिला, सरल बालककी बहुत कठिन परीक्षा हो गयी, भक्तके दुःखसे द्रवित होकर भगवान् प्रकट हुए। '**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्**' सच्चिदानन्दघन जो योग-समाधि और ज्ञाननिष्ठासे भी दुर्लभ हैं, वह परब्रह्म नारायण धन्नाजीके प्रेमाकर्षणसे अपूर्व मनमोहिनी मूर्ति धारणकर भक्तके सामने प्रकट

हुए और उस '**प्रयतात्मनः**' प्रेमी भक्तकी '**भक्त्युपहृतम्**' रोटी बड़े प्रेमसे भोग लगाने लगे। जब आधी रोटी खा चुके तब महाभाग धन्नाने उनका हाथ पकड़ लिया और कहने लगे कि 'ठाकुरजी! इतने दिनोंतक तो आये नहीं, मुझे भूखों मारा, आज आये तब अकेले ही सारी रोटी लगे उड़ाने, तुम्हीं सब खा जाओगे, तब क्या आज भी मैं भूखों मरूँगा, क्या मुझको जरा-सा भी नहीं दोगे?'

बालक-भक्तके सरल सुहावने वचनोंको सुनकर भगवान् मुसकराये और बची हुई रोटी उन्होंने धन्नाजीको दे दी। आज इस धन्नाजीकी रोटीके अमृतसे बढ़कर स्वादका बखान शेष-शारदा भी नहीं कर सकते। भक्तवत्सल, करुणानिधि कौतुकी भगवान् प्रतिदिन इसी प्रकार प्रकट होकर अपनी जन-मन-हरण रूप-माधुरीसे धन्नाजीका मन मोहने लगे। मनुष्य जबतक यह अनोखा रूप नहीं देखता तभीतक उसका मन वशमें रह सकता है, जिसे एक बार उस रूप-छटाकी झाँकी करनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया, उसीका मन सदाके लिये हाथसे जाता रहा, फिर उसे एक क्षणके लिये भी उस सुन्दरकी छबिको छोड़कर संसारकी कोई चीज नहीं सुहाती—कोई बात नहीं भाती। धन्नाजीकी भी यही दशा हुई। यदि वह एक क्षणभरके लिये उस मनमोहनको आँखोंके सामने या हृदय-मन्दिरमें न देख पाते तो उसी समय मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते, पलभरका भी भगवान्का वियोग उनके लिये असह्य हो उठता। इसीसे भगवान्को सदा-सर्वदा धन्नाजीके साथ या उनके हृदयधाममें रहना पड़ता। धन्नाने प्रेमरज्जुसे भगवान्को बाँध लिया, इसीसे वे भक्तके परम धन भगवान् भी धन्नाको एक पलके लिये अलग नहीं छोड़ सकते थे। भगवान्का तो यह प्रण ही ठहरा—

योमां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो सबमें मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मुझसे वह कभी अदृश्य नहीं होता।'

धन्नाजी कुछ बड़े हो गये, इससे माताने उन्हें गौ भी दुहनेका काम सौंप दिया। कई गायें थीं, धन्नाजी दोनों समय गौ दुहा करते। एक दिन भगवान्‌ने प्रकट होकर उनसे कहा,'भाई! तुम्हें अकेले इतनी गायें दुहनेमें बड़ा कष्ट होता होगा। तुम्हारी गायें मैं दुह दिया करूँगा।'

सुर-मुनि-वन्दित सकल चराचर-सेव्य अखिल विश्व-स्वामी भगवान् अपने बालक-भक्तके साथ रहकर उसकी सेवा करने लगे। धन्य! धन्नाके सुखका क्या ठिकाना है! वह निरन्तर उस परम सुखरूप परमात्माके साथ रहकर अप्रतिम, अचिन्त्य आनन्दका उपभोग कर रहा है।

कुछ दिन बाद धन्नाजीके गुरु वही ब्राह्मण-देवता धन्नाके घर फिर आये और उससे पूछने लगे कि 'क्यों भगवान्‌की पूजा करते हो या नहीं?' धन्नाने हँसकर कहा, 'महाराज! अच्छा भगवान् दे गये, कई दिनोंतक तो उसने मुझे न दर्शन दिया, न रोटी खायी; स्वयं भी भूखा रहा और मुझे भी भूखों मारा। अन्तमें एक दिन प्रकट होकर सारी रोटी चट करने लगा, बड़ी कठिनतासे मैंने हाथ पकड़कर आधी रोटी अपने लिये रखवायी। परंतु महाराज! वह है बड़ा प्रेमी, सदा मेरे साथ रहता है। दोनों समय मेरी गायें दुह देता है। मैं भी उसे छोड़ नहीं सकता। वह बड़ा ही प्यारा और सुन्दर है, मेरे तो प्राण उसीमें बसते हैं।

धन्नाजीकी बात सुनकर ब्राह्मणने आश्चर्यसे पूछा,'कहाँ है

वह तुम्हारा भगवान्?' धन्नाने कहा, 'क्या तुम्हें दीखता नहीं, यह देखो, मेरे पास ही तो खड़ा है।' ब्राह्मणको दर्शन नहीं हुए, उसने कहा, 'कहाँ धन्ना! मुझे तो नहीं दीखता।' धन्ना भगवान्से कहने लगे, 'नाथ! यही ब्राह्मण तो मुझे तुम्हारी मूर्ति दे गया था, अब इसे दर्शन क्यों नहीं देते!' भगवान् बोले, 'धन्ना! तुमने जन्म-जन्मान्तरके महान् पुण्य और शुद्ध भक्तिसे मेरे दर्शन प्राप्त किये हैं। इस ब्राह्मणमें इतना तपोबल नहीं है। परंतु इसने तुम्हारा गुरु बनकर बहुत बड़ा पुण्य संचय कर लिया है, इस पुण्यसे इसे मेरे दर्शन हो सकेंगे। तुम इसकी गोदमें जा बैठो, तुम्हारे पवित्र शरीरके स्पर्शसे इसे दिव्य नेत्र प्राप्त होंगे; जिससे यह मुझे देख सकेगा।' धन्नाने ऐसा ही किया, भक्त ब्राह्मण भक्तवत्सल भगवान्की अपूर्व छटा देखकर कृतकृत्य हो गया! तदनन्तर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

धन्नाजीकी बाललीला समाप्त हुई। इसलिये भगवान्ने भी उनसे अब बालकोचित सम्बन्ध नहीं रखा। भगवान्ने धन्नाजीको परम्परारक्षाके लिये नियमानुसार गुरुमन्त्र ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। धन्नाजी काशी गये और उन्होंने भक्तश्रेष्ठ आचार्यश्री श्रीरामानन्दजीसे दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर वह घर लौट आये। उन्हें भगवान्का तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया। अबसे धन्नाजी अपने परम गुप्त धनको हृदयकी गुप्त गम्भीर गुहामें ही देखने लगे।

एक समय धन्नाजीके पिताने उन्हें खेतमें गेहूँ बोनेके लिये बीज देकर भेजा। रास्तेमें कुछ संत मिल गये। संत भूखे थे, उन्होंने धन्नाजीसे भिक्षा माँगी। धन्नाजीको तो सर्वत्र अपने श्यामसुन्दर दीखते थे, अतः संतरूपमें भी उन्हें वही दिखलायी दिये, उनके लिये धन्नाके पास अदेय वस्तु ही क्या थी? उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे समस्त गेहूँ संतोंको दे दिये।

यह स्मरण रखना चाहिये कि जहाँ अभावग्रस्त गरीब खानेके लिये अन्न चाहते हैं, वहाँ मानो साक्षात् भगवान् ही उनके रूपमें हमसे सेवा चाहता है, ऐसे मौकेपर चूकनेवालोंको पीछे बहुत पछताना पड़ता है। धन्नाजी-सरीखे भक्त भला क्यों चूकने लगे?

धन्नाजीने गेहूँ तो दे दिये, परंतु माता-पिताके भयसे यों ही घर लौटना उचित न समझकर वह खेत चले गये और यों ही जमीनपर हल चलाकर घर लौट आये। भक्तकल्पतरु भगवान्ने धन्नाके बिना ही माँगे उसका गौरव बढ़ानेके लिये अपनी अघटन-घटना-पटीयसी मायासे खेतको सबके खेतोंसे बढ़कर हरा-भरा कर दिया। धन्नाजीके खेतकी बहुत प्रशंसा होने लगी। यह सब सुनकर धन्नाजीने सोचा कि मैंने तो खेतमें एक भी बीज नहीं डाला था, फिर यह सुन्दर खेती कैसे हो गयी? खेत सूखा पड़ा होगा, इससे लोग सम्भवत: दिल्लगीसे ऐसा कहते होंगे। परंतु जब उन्होंने स्वयं खेत जाकर देखा और जब उसे लहलहाता और उमड़ता पाया, तब तो उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। प्रभुकी माया समझकर मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया! धन्नाजीके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ चला! नाभाजी महाराज लिखते हैं—

घर आये हरिदास तिन्हैं गोधूम खवाये।
तात मात डर थोथ खेत लंगूर बवाये॥
आसपास कृषिकार खेतकी करत बड़ाई।
भक्त भजेकी रीति प्रगट परतीति जु पाई॥
अचरज मानत जगतमें कहुँ निपज्यो कहुँ वै बयो।
धन्य धनाके भजनको, बिनहि बीज अंकुर भयो॥

चन्द्रहास

द्वापरयुगका इतिहास है। केरल-देशमें मेधावी नामक एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे, उनके एकमात्र पुत्रका नाम था चन्द्रहास। चन्द्रहासकी उम्र जब बहुत ही छोटी थी, तभी शत्रुओंने केरलपतिको युद्धमें मार डाला। चन्द्रहास-जननी पतिव्रता रानी सती हो गयी। राज्यपर दूसरोंने अधिकार कर लिया। इस विपत्तिकालमें चन्द्रहासकी धाय उसे लेकर चुपके-से नगरसे निकल गयी और कुन्तलपुर जाकर रहने लगी। स्वामिभक्ता धायने तीन वर्षकी उम्रतक मेहनत-मजदूरी करके चन्द्रहासका पुत्रवत् पालन किया, तदनन्तर वह भी कालका ग्रास बन गयी।

चन्द्रहास अनाथ और निराश्रय हो गया, परंतु अनाथनाथ भगवान् निराधारका आधार है। वह विश्वम्भर सबका पेट भरता है। भगवत्कृपावश चन्द्रहासका पालन नगरकी स्त्रियोंद्वारा होने लगा। उसके मनोहर मुखमण्डलने सबके मन हर लिये। जो स्त्री उसे देखती, वही उसे पुत्रवत् प्यार करती, खिलाती-पिलाती और पहननेको वस्त्र देती। एक दिन देवर्षि नारद घूमते-घामते उधर आ निकले। बालकको योग्य अधिकारी जान उसे श्रीशालग्रामजीकी एक मूर्ति और 'रामनाम' मन्त्र दे गये। शुद्ध-हृदय शिशु बड़े प्रेमसे मूर्तिकी पूजा और हरि-नाम-कीर्तन करने लगा। शिशु-अवस्था, सुन्दर वदन, सुहावनी सरस वाणी और श्रीहरि-नाम-गान—सभी साज मनहरण करनेवाले थे। इससे चन्द्रहासको जो देखता वही मुग्ध हो जाता। वह इसी अवस्थामें परम धार्मिक और अनन्य हरिभक्त हो गया। जब वह अपने शरीरकी सुधि भूलकर मधुर तानसे हरि-नाम-गान करता तब उसके चारों ओर एक दिव्य चाँदनी छिटक जाती। उस समय

चन्द्रहास देखता मानो एक जन मन मोहन श्यामवदन बालक मुरली हाथमें लिये उसीके साथ नाच और गा रहा है। उसके प्राणमोहन सुरोंको सुनकर चन्द्रहासकी तन्मयता और भी बढ़ जाती।

× × × ×

कुन्तलपुरके राजा बड़े पुण्यात्मा थे, परंतु उनके कोई पुत्र न था। केवल एक रूप-गुणवती कन्या थी, जिसका नाम था चम्पकमालिनी। राजगुरु महर्षि गालवके उपदेशानुसार राजा अपना सारा समय केवल भजन-स्मरण-सत्संगमें ही लगाते थे। राज्यका सम्पूर्ण कार्यभार धृष्टबुद्धि नामक मन्त्रीपर था। कुन्तलपुरका राज्य एक तरहसे वह मन्त्री ही करता था। उसके अलग भी बड़ी जमींदारी थी, धन-सम्पत्तिका पार नहीं था। धृष्टबुद्धिके मदन और अमल नामक दो सुयोग्य पुत्र और विषया नामकी एक सुन्दरी कन्या थी। मदन और अमल राज्यकार्यमें पिताकी यथेष्ट सहायता करते। इनमें मदन श्रीकृष्णभक्त और उदारचरित था, जिससे मन्त्रीके महलोंमें जहाँ विलासके राग-रंगका प्रवाह बहता था, वहाँ कभी-कभी संत-समागम, अतिथि-सत्कार और भगवन्नाम-कीर्तन भी हुआ करता था। यद्यपि धृष्टबुद्धिको इन कामोंसे कोई प्रेम नहीं था, वह रात-दिन राजकार्य और धनसंचयमें ही लगा रहता था, परंतु सुयोग्य पुत्र मदनको स्नेहवश इन कामोंसे रोकता भी नहीं था।

× × × ×

सन्ध्याका समय है। चन्द्रहास स्वाभाविक ही नाम-कीर्तन करता हुआ नगरकी सड़कोंपर घूम रहा है, मधुरध्वनि सुनकर और भी बहुत-से बालक उसके साथ हो गये हैं। सभी आनन्दसे नाच-नाचकर मधुर कीर्तन करते हुए नगरवासी नर-नारियोंका चित्त अपनी ओर खींच रहे हैं। घूमते-घूमते यह प्रेममत्त बाल-

कीर्तन-दल धृष्टबुद्धिके प्रासादके निकट जा पहुँचा। मन्त्री-पुत्र मदनके यहाँ ऋषिमण्डली एकत्र हो रही है। हरि-चर्चा चल रही है। मीठी हरि-ध्वनि सुनकर ऋषियोंकी आज्ञासे मदनने चन्द्रहासको अंदर बुला लिया। चन्द्रहासके साथ मिलकर बालक नाचने-गाने लगे। मुनिमण्डली मुग्ध हो गयी। इतनेमें वहाँ धृष्टबुद्धि भी आ गया। मुनियोंका मन चन्द्रहासके तेजपूर्ण मुखमण्डलकी विमल शीतल छटा देखकर उसकी ओर आकर्षित हो गया। उन्होंने उसे अपने पास बुलाकर बैठा लिया। उसके शरीरके लक्षणोंको देख-सुन और योगसे उसकी प्रतिभाका पता लगाकर ऋषि एक स्वरसे कहने लगे—

सुन्दर लक्षण-युक्त बाल यह है तपधारी, मन्त्रीवर।
रक्खो, पालन करो इसे अति स्नेह भावसे अपने घर॥
सभी तुम्हारी धन-सम्पतिका यही पूर्ण स्वामी होगा।
होगा नृपति देशका, वैष्णव-पदका अनुगामी होगा॥

ऋषियोंके यह वचन अभिमानी धृष्टबुद्धिके हृदयमें तीर-से लगे। अज्ञात-कुल-गोत्र अनाथ बालक मेरी सम्पत्तिका स्वामी होगा! कहाँ मेरा पदगौरव, धन-ऐश्वर्य, दोर्दण्ड-प्रबल-प्रताप और कहाँ यह राहका भिखारी छोकरा? तत्काल अभिमान द्वेषके रूपमें परिणत हो गया। धृष्टबुद्धिके मनमें भीषण हिंसावृत्ति जाग उठी। उसने अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया। ऋषि और पुत्रोंसे कुछ न बतलाकर धृष्टबुद्धि बालकोंको मिठाई देनेके बहाने अन्तःपुरमें ले गया। वहाँ और सब बालक तो मिठाई देकर बाहर निकाल दिये गये, रह गया एक चन्द्रहास। थोड़ी ही देरमें मन्त्रीके संकेतसे एक विश्वासी घातक वहाँ आ पहुँचा। धृष्टबुद्धिने धीरेसे उसके कानमें कुछ कहकर चन्द्रहासका हाथ उसे पकड़ा दिया। घातक चन्द्रहासको ले चला, तब उसने फिर कहा, 'देखो, आज

ही काम बन जाय, कोई निशान जरूर लाना, पूरा इनाम मिलेगा।' घातक बालकको लेकर अदृश्य हो गया।

× × × ×

भीषण सुनसान जंगल है। चारों ओर अँधेरा छा रहा है। घातक म्यानसे तलवार निकाली। चन्द्रहास समझ गया कि यह मुझे मारना चाहता है। उसने निर्भयतासे कहा, 'भाई! तनिक ठहर जाओ, मुझे अपने भगवान्‌की पूजा कर लेने दो, फिर खुशीसे मारना।' घातकका हृदय कुछ पिघला, 'उसने अनुमति दे दी!' चन्द्रहासने मुँहसे शालग्रामजीकी मूर्ति निकालकर प्रेमसे आँसू बहाते हुए वनके फूल-पत्तोंसे भगवान्‌की पूजा की। तदनन्तर गद्‌गद कण्ठसे उसने गाया—

गहो आज हाथ नाथ शरण मैं तिहारी।
तात मात बन्धु-भ्रात सुहृद सौख्यकारी॥
एक तुम्हीं सरबस मम प्रणत-दुःखहारी।
दास जानि इच्छाधीन इच्छित शुभकारी॥
मृत्युमोहि, मोहन! मोहि, मिलौ मोहि टारी।

वनस्थलीमें करुणारस छा गया। भगवान्‌ने यन्त्र घुमाया, घातककी आँखोंसे आँसूकी दो बूँदें टपक पड़ी। उसका हृदय पलट गया। उसने मन-ही-मन सोचा—'ऐसे हरिभक्त निर्दोष बालककी हत्यासे न मालूम मेरी क्या गति होगी?' वध करनेका विचार त्याग दिया, परंतु धृष्टबुद्धिके लिये कोई निशान चाहिये, वह इस चिन्तामें पड़ गया। चन्द्रहासके एक पैरमें छः अँगुलियाँ थीं। अकस्मात् घातककी दृष्टि उधर गयी। उसका चेहरा चमक उठा, उसने तुरंत ही तलवारसे छठी अँगुली काट ली। अशुभ स्वयमेव नष्ट हो गया। चन्द्रहासको वहाँ छोड़कर घातक लौट गया, धृष्टबुद्धिको अँगुली दिखा दी, जिससे उसके आनन्दका

पार नहीं रहा। उसने समझा, आज मेरे बुद्धिकौशलसे मुनियोंकी अमोघवाणी भी व्यर्थ हो गयी।

× × × ×

घोर अरण्यमें सुकुमार बालक अकेला पड़ा है; पैरमें पीड़ा हो रही है, परंतु मुखसे वही कृष्णनामकी धुन लग रही है। इतनेमें उसने देखा, एक स्निग्ध नील ज्योति उसकी ओर बढ़ी चली आ रही है। उसी समय अकस्मात् जादूकी तरह उसकी सारी वेदना नष्ट हो गयी। भूख-प्यास शान्त हो गयी, मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा, परम आनन्दसे भर गया। वनकी हरिणियाँ उसका पैर चाटने लगीं, पक्षियोंने छाया की, वृक्ष फल देने लगे, पृथ्वी कोमल हो गयी। बालक मुग्धचित्त और मधुर कण्ठसे नामध्वनि करने लगा। भीषण अरण्य हरिनाम-नादसे निनादित हो उठा, पशु-पक्षी परम आत्मीयकी तरह उसके साथ खेलने लगे।

× × × ×

कुन्तलपुरके अधीन चन्दनपुर नामक एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँके राजाका नाम था कुलिन्दक। राज्य छोटा होनेपर भी धर्म और धन-धान्यसे पूर्ण था, अभाव था तो एक यही कि राजा पुत्रहीन था। प्रभुकी मायासे राजा कुलिन्दक किसी कार्यवश उसी वनसे जा रहा था, जिसमें चन्द्रहासको घातक छोड़ गया था। मधुर कीर्तन-ध्वनि सुनकर राजा उसके पास गया और बालककी मोहिनी मूर्ति देखते ही वह मुग्ध हो गया। राजाने लपककर बालकको गोदमें उठा लिया और अंगकी धूल झाड़कर उससे माता-पिताके नाम-धाम पूछने लगा। चन्द्रहासने कहा—

'मम मातापिताकृष्णास्तेनाहं परिपालितः।'

माता-पिता श्रीकृष्ण हमारे उनसे ही मैं पालित हूँ।

राजाने सोचा, हरिने कृपाकर मेरे लिये ही इस वैष्णव

देवशिशुको यहाँ भेजा है। उसने चन्द्रहासको छातीसे लगाकर घोड़ेपर चढ़ा लिया और घर लौट गया। रानीकी गोद भर गयी! राजाने दत्तक-ग्रहणकी घोषणा कर दी, नगरभरमें आनन्द छा गया!

चन्द्रहासने पहले तो कुछ पढ़ना नहीं चाहा; गुरु जब पढ़ाते तभी वह कहता कि मेरी जीभ हरिनामके सिवा और कुछ उच्चारण ही नहीं कर सकती! परंतु यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके अनन्तर थोड़े ही कालमें वह चारों वेद और सभी विद्याओंमें निपुण हो गया। अपने सद्गुणोंसे वह शीघ्र ही सारे राजपरिवार और प्रजाका जीवनाधार बन गया। राज्यमें धार्मिकता छा गयी। हरिगुण-गानसे छोटी-सी रियासत पूर्ण हो गयी। घर-घर हरि-चर्चा होने लगी, सभी लोग एकादशीका व्रत और भगवान्की उपासना करने लगे। चन्द्रहासने प्रत्येक पाठशालामें हरिगुण-गान अनिवार्य कर दिया। उसका सिद्धान्त था—

यस्मिञ्छास्त्रे पुराणे च हरिनाम न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥

'जिस शास्त्र-पुराणमें हरिनाम न हो वह ब्रह्माद्वारा रचित होनेपर भी श्रवण करनेयोग्य नहीं है।'

× × × ×

चन्दनपुर-रियासतकी ओरसे कुन्तलपुरको वार्षिक दस हजार स्वर्णमुद्राएँ कर-स्वरूप दी जाती थीं। चन्द्रहासने उन स्वर्णमुद्राओंके साथ ही और भी बहुत-सा धन, जो शत्रु-राज्योंपर विजय करके उसने प्राप्त किया था, कुन्तलपुर भेज दिया।

धृष्टबुद्धिने सुना, चन्दनपुर-राज्य धन-ऐश्वर्यसे पूर्ण हो गया है, वीर युवराजने बड़े-बड़े राज्योंपर विजय पायी है, वहाँकी प्रजा सब प्रकारसे सुखी है, सारी रियासतमें हरि-ध्वनि गूँज रही

है। तब उसकी इच्छा हुई कि एक बार चलकर वहाँकी व्यवस्था देखनी चाहिये। धृष्टबुद्धि कुन्तलपुरसे चलकर शीघ्र ही चन्दनपुर आ पहुँचा।

धार्मिक राजा और धीर-वीर राजकुमारने उसका हृदयसे स्वागत किया। धृष्टबुद्धि युवराजके मुखकमलको देखकर चकित हो गया और एकटकी लगाकर उसकी ओर देखने लगा, पर चन्द्रहासको पहचानते ही उसके हृदयमें आग लग गयी, उसने मन-ही-मन जाल रचा। छलसे चन्द्रहासका वध करनेका निश्चय कर उसने बड़े पुत्र मदनके नाम एक गुप्त पत्र लिखा और ***'विष रस भरा कनक घटु जैसें'*** की उक्तिको चरितार्थ करते हुए कपटसे हँसकर पत्र चन्द्रहासके हाथमें देकर कहा, 'राजकुमार! बड़ा आवश्यक कार्य है, इससे तुम्हारा और हमारा बड़ा हित होगा, अतएव आज ही कुन्तलपुर जाकर यह पत्र कुमार मदनको दे दो। देखना, रास्तेमें पत्र खुलने न पावे और न इसका रहस्य मदनके सिवा अन्य कोई जाने ही!'

× × × ×

चन्द्रहास घोड़ेपर सवार होकर उसी क्षण चल दिया। कुन्तलपुर वहाँसे चौबीस कोस था। पहुँचते-पहुँचते दिन ढल गया। नगरसे बाहर कुन्तलपुर-नरेशका सुन्दर बाग था। चन्द्रहास थकान मिटाने और जल पीनेके लिये बगीचेमें ठहर गया, सुहावने सरोवरमें उसने स्वयं जल पिया और घोड़ेको पिलाया! रास्तेकी थकावट थी, घोड़ेको एक ओर बाँधकर वह वृक्षकी छायामें लेट गया। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुके स्पर्शसे उसे नींद आ गयी।

उसी समय राजकुमारी चम्पकमालिनी और मन्त्रिकन्या विषया सखियोंसहित बागमें टहलने आयी थी। नाना प्रकारसे आमोद-प्रमोदकर राजकुमारी और अन्यान्य सखियाँ तो चली

गयीं। भगवत्प्रेरणासे विषया वहीं रह गयी। अनंग-मद-मोचन राजकुमार चन्द्रहासको देखते ही उसका मन मोहित हो गया। मन-ही-मन उसने राजकुमारको पतिरूपमें वरण कर लिया। उसने देखा कुमारके हाथमें एक पत्र है! विषयाने धीरेसे पत्र खींच लिया। भाई मदनके नाम पिताजीके हस्ताक्षरयुक्त पत्र देखकर उसने कुतूहलवश खोल दिया, परंतु पत्र पढ़ते ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा, शरीर थर्रा गया, मुखपर विषाद छा गया। पत्रमें लिखा था—

स्वति श्री प्रिय पुत्र मदन! देखत यह पाती।
विष दे देना जिससे हो मम शीतल छाती॥
कुल विद्या सौन्दर्य शूरता कुछ न देखना।
मदन शत्रु इस राजकुँवरको हृदय लेखना॥

विषयाने विचार किया, ऐसे सुन्दर सलोने सिंहशावक राजकुमारको पिताजी विष क्यों दिलवाने लगे? हो-न-हो मेरे योग्य वांछित वर देखकर आनन्द-विह्वलतामें उनसे लिखनेमें भूल हो गयी है। वास्तवमें 'विष दे देना' की जगह 'विषया देना' लिखना चाहिये था। पिताजी छाती शीतल होनेकी बात लिखते हैं; ऐसे नरश्रेष्ठको विष देकर भला किसकी छाती शीतल होगी? बड़े भाग्यसे ऐसे दामाद मिलते हैं; इसीसे पिताजीने कुल, विद्या आदि कुछ भी न देखकर 'मदन शत्रु' यानी सुन्दरतामें कामदेवको भी परास्त करनेवाले इस नयनाभिराम राजपुत्रके हाथ तुरंत मुझे दे देना चाहा है। परमेश्वरने बड़ा अच्छा किया, जो यह पत्र पहले मेरे हाथ लग गया, कहीं भाई साहेब भ्रमसे विष दे डालते तो महान् अनर्थ हो जाता। विषयाने तर्कसे ऐसा निश्चयकर तुरंत 'विष दे देना, के बीचके 'दे' को मिटाकर उसकी जगह 'या' अक्षर 'विष' शब्दसे मिलाकर लिख दिया,

जिससे 'विषया देना' स्पष्ट पढ़ा जाने लगा। 'मदन शत्रु' सब अलग-अलग थे, उन शब्दोंको भी जोड़ दिया। जिससे 'मदन शत्रु' की जगह 'मदनशत्रु' पढ़ा जाने लगा। तदनन्तर आमके गोदसे पत्र ज्यों-का-त्यों बंदकर राजकुमारके हाथमें रखकर वह दौड़कर कुछ दूर आगे जाती हुई सखियोंके दलमें जा मिली। राजकुमारी और सखियाँ उससे मीठी चुटकियाँ लेने लगीं।

× × × ×

थोड़ी ही देरमें चन्द्रहासकी आँखें खुलीं, संध्या होने आयी थी। उसने तुरंत ही जाकर मदनको पत्र दे दिया, पत्र पढ़कर मदनको बड़ी प्रसन्नता हुई। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसी दिन गोधूलिलग्नमें विषयाके साथ चन्द्रहासका विवाह बड़े समारोहके साथ हो गया। मदनने याचकोंको मुक्त-हस्तसे दान देकर संतुष्ट किया। कन्यादानके समय कुन्तलपुरनरेश स्वयं पधारे थे। राजकुमारकी मनमोहिनी रूप-गुण-राशि देखकर राजाने विचार किया कि 'न तो चम्पकमालिनीके लिये इससे अधिक योग्य कोई दूसरा वर ही मिल सकता है और न राज्यशासनके लिये ऐसा बल-वीर्य-बुद्धि और शील-सदाचारसम्पन्न कोई उत्तराधिकारी ही!' राजाने उसी क्षण अपने मनमें धीर-वीर राजकुमार चन्द्रहासके हाथ राजपुत्रीसहित राज्य समर्पण करनेका निश्चय कर लिया!

तीन दिन बाद धृष्टबुद्धि लौटा। सर्वथा विपरीत दशा देखकर उसके दिलपर गहरी चोट लगी; परंतु उसने अपने मनका कुभाव किसीपर प्रकट होने नहीं दिया। उसके द्वेष-हिंसापूर्ण मलिन अन्तःकरणने यही निश्चय किया कि 'कन्या चाहे विधवा हो जाय पर इस शत्रुका वध अवश्य करना होगा।' यही दुष्ट-हृदयकी पराकाष्ठा है।

नगरसे दूर वनमें पहाड़ीपर भवानीका मन्दिर था, धृष्टबुद्धिने

वहाँ एक निर्दय घातकको यह समझाकर भेज दिया कि आज संध्याके बाद जो कोई वहाँ जाय उसीका सिर उतार लेना। इधर चन्द्रहाससे कपटकी हँसी हँसते हुए उसने कहा, 'भवानी हमारी कुलदेवी हैं, किसी भी शुभ कार्यके अनन्तर ही हमारे यहाँ भवानीपूजनकी कुलरीति है; अतएव तुम आज ही संध्याको वहाँ जाकर भवानीके भेंट चढ़ा आना।'

श्वशुरकी आज्ञासे सरलहृदय चन्द्रहास सामग्री लेकर भवानीके स्थानकी ओर चला। मनुष्य मन-ही-मन कितनी कुटिल कामना करता हुआ नाना प्रकारसे शेखचिल्लीकी तरह महल बनाता है, पर ***'करी गोपालकी सब होय।'***

कुन्तलपुर-नरेशके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने आज ही राज्य त्यागकर परमात्मपद-प्राप्तिका साधन करनेके लिये वन जानेका निश्चय कर लिया; परंतु जानेसे पूर्व राजकुमारीका विवाह करना और किसीको राज्यका उत्तराधिकारी बनाना—ये दो आवश्यक काम करने थे। राजाने पूर्वनिश्चयके अनुसार मन्त्रीपुत्र मदनको बुलाकर कहा—बेटा! मेरी आज ही वन जानेकी इच्छा है, चम्पकमालिनीका हाथ किसी योग्य राजपुत्र बालकको सौंपना चाहता हूँ, राज्यका उत्तराधिकार भी देना है। हमलोगोंके सौभाग्यसे भगवान्‌ने कृपाकर चन्द्रहासको यहाँ भेज दिया है। वह सब तरहसे योग्य है, तुम अभी जाकर चन्द्रहासको यहाँ भेज दो!'

राजाकी बात सुनकर सरलहृदय मदनके हर्षका पार न रहा। वह दौड़ा बहनोईको बुलाने। पिताकी बुरी नीयतका उसे कुछ भी पता नहीं था। चन्द्रहास भवानीके मन्दिरकी ओर जाता हुआ उसे रास्तेमें मिला। उसने राजाज्ञा सुनाकर चन्द्रहासको राजमहलमें भेज दिया और उससे पूजाकी सामग्री लेकर स्वयं सीधा ही भवानीके मन्दिर चला गया। कहना नहीं होगा कि मन्दिरमें

पहुँचते ही घातककी तीक्ष्णधार तलवारने उसके शरीरके दो टुकड़े कर दिये! चन्द्रहास बच गया—

जाको राखै साँइयाँ, मार न सकिहैं कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

इधर कुन्तलपुर-नरेशने चम्पकमालिनीका हाथ चन्द्रहासको पकड़ाकर आशीर्वाद दिया और उसी समय गालवमुनिकी आज्ञासे चन्द्रहासका राज्याभिषेक भी हो गया। चम्पकमालिनीके साथ चन्द्रहासने मुनिकी अनुमतिसे गान्धर्व-विवाह कर लिया। राजा सब कुछ छोड़-छाड़कर मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समबुद्धि कर वनको चले गये—

'वनं जगाम सन्त्यज्य समलोष्टाश्मकाञ्चनः।'

धृष्टबुद्धिने सोचा था कुछ और पर हुआ कुछ और ही—***'तेरे मन कुछ और है कर्ताके कछु और।'*** दूसरे दिन प्रातःकाल धृष्टबुद्धिने जब चन्द्रहासके साथ चम्पकमालिनीके विवाह और उसके राज्याभिषेक होने तथा प्रिय पुत्र मदनके घातकद्वारा मारे जानेका समाचार सुना, तब तो उसके सिरपर वज्र ही टूट पड़ा। सत्य है—**'परार्थे योऽवटं कर्ता तस्मिन् स पतति ध्रुवम्।'** दूसरोंके लिये खाई खोदनेवाला स्वयं निश्चय ही उसमें पड़ता है!

धृष्टबुद्धि हतबुद्धि होकर भवानीके मन्दिरकी ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि प्राणाधिक प्रिय पुत्रका शरीर दो टुकड़े हुए पड़ा है। उसने शोकसे व्याकुल होकर नाना प्रकार विलाप करते हुए उसी समय तलवारसे आत्महत्या कर ली!

श्वशुर धृष्टबुद्धिको उन्मत्तकी तरह दौड़ते देखकर चन्द्रहास भी उसके पीछे-पीछे चला था। मन्दिरमें जाकर चन्द्रहासने देखा कि पिता-पुत्र दोनों मरे पड़े हैं। चन्द्रहासने इन दोनों जीवोंकी मृत्युमें अपनेको कारण समझकर स्वयं मरना चाहा। ज्यों ही

उसने तलवार म्यानसे निकाली त्यों ही भवानीने साक्षात् प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे खींचकर अपनी गोदमें बैठा लिया। जन्मसे मातृहीन चन्द्रहासको आज जगज्जननीकी गोदीमें बैठनेसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

माता बोली, 'मेरे लाल चन्द्रहास! धृष्टबुद्धि बड़ा दुष्ट था, उसने तुझे मारनेके लिये बड़े-बड़े जाल रचे थे, अच्छा हुआ वह मारा गया। हाँ, यह मदन भक्त और तेरा प्रेमी था, परंतु इसने तेरे विवाहके समय धन-ऐश्वर्यके दानको पर्याप्त न समझकर अपना शरीर तुझे अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अतः आज यह भी उऋण हो गया। तू शोक छोड़कर राज्य कर। मैं प्रसन्न हूँ, इच्छित वर माँग।'

चन्द्रहासने कहा, 'जननी! तुम वर देना चाहती हो, मुझपर प्रसन्न हो, तो पहला वर तो मुझे यह दो कि '**हरौ भक्तिः सदा भूयान्मम जन्मनि जन्मनि।**' 'हरिमें मेरी जन्म-जन्ममें भक्ति सर्वदा बनी रहे और दूसरा वर यह दो कि मेरे लिये मरे हुए ये दोनों व्यक्ति इसी समय जी उठें। श्वशुर धृष्टबुद्धिने मुझे मारनेके लिये जो कुछ किया, उसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं है; मनुष्य अज्ञानवश यों किया ही करता है। माता! इसे क्षमा करो, इसे सुबुद्धि दो, इसके पापोंका विनाश कर इसे भगवान्‌की विमल भक्ति प्रदान करो।'

भवानी प्रेमभरी वाणीसे 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। दोनों पिता-पुत्र सोकर जगनेकी तरह उठ बैठे और उन्होंने चन्द्रहासको गले लगा लिया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

सुधन्वा

'अहा! मेरा बड़ा सौभाग्य है, आज इसी बहाने साकाररूपसे प्रकट सच्चिदानन्दघन परमात्मा पार्थ-सारथि त्रिभुवन-मोहन भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कर नेत्रोंको सफल करूँगा। सुना है उनका सौन्दर्य अतुलनीय है, उनके चरित्र विचित्र हैं, इन अभागी आँखोंने प्रभुके चारु चरणोंका दर्शन आजतक नहीं किया, वृद्धावस्था आ गयी। आज रणांगणमें उनके चरण-दर्शन कर जन्म-जीवनको सार्थक करूँगा।' चम्पकपुरीके भक्त राजा हंसध्वजने ऐसा मनोरथ करते हुए सेनापतिको आज्ञा दी—

न मया वीक्षितः कृष्णो वृद्धेनापि स्वचक्षुषा।
तस्मान्निर्यान्तु मे वीरा युद्धार्थं याम्यहं रणम्॥

'मैं वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर भी अबतक अपनी आँखोंसे श्रीकृष्णके दर्शन नहीं कर पाया हूँ, अतएव मेरे सारे वीर युद्धार्थ यात्रा करें, मैं भी रणक्षेत्रमें चलता हूँ।'

× × × ×

पाण्डवोंके अश्वमेध-यज्ञका घोड़ा चम्पकपुरीके पास पहुँच गया। महावीर अर्जुन दिव्य शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर प्रद्युम्नादि वीरोंसहित अश्वकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे चले आ रहे हैं। राजा हंसध्वजने दूतोंसे इस सुसंवादको सुनकर क्षत्रिय-धर्मके अनुसार रणकी तैयारी की और साथ ही एक अनुगत भक्तके आते पार्थ-सारथि भगवान्के दर्शनकी प्रबल भावनासे रणक्षेत्रकी ओर प्रयाण किया।

राजा हंसध्वज बड़े ही धर्मात्मा, प्रजापालक, शूरवीर और भगवद्भक्त थे। उनके राज्यमें एक विशेषता यह थी कि राजघरानेके पुरुषोंसहित प्रजाके सभी पुरुष एकपत्नीव्रतका पालन

करनेवाले थे तथा देशके सभी नर-नारी भगवान्‌के परम भक्त थे। राज्यमें नौकरीके लिये बाहरसे कोई आदमी आता तो राजा सबसे पहले उससे कहते थे—

एकपत्नीव्रतं तात यदि ते विद्यतेऽनघ।
ततस्त्वां धारयिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
न शौर्यं न कुलीनत्वं न च क्वापि पराक्रमः।
स्वदाररसिकं वीरं विष्णुभक्तिसमन्वितम्॥
वासयामि गृहे राष्ट्रे तथान्येऽपि हि सैनिकाः।
अनंगवेगं स्वान्ते ये धारयन्ति महाबलाः॥

'हे निष्पाप! तुम यदि एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले हो तो मैं तुम्हें रख सकता हूँ। भाई! मैं सत्य कहता हूँ कि निकम्मी शूरता, कुलीनता और पराक्रम मैं नहीं चाहता। जो वीर केवल अपनी एक ही पत्नीमें प्रेम करनेवाला और भगवान्‌की भक्तिसे सम्पन्न होगा, मैं उसीको अपने घर तथा राष्ट्रमें स्थान दे सकता हूँ। जो कामदेवके प्रबल वेगको धारण करते हैं, वे ही वास्तवमें महाबली हैं।' इस प्रकार अधिकारी और प्रजा सभीका जीवन धर्म और सदाचारपर अवलम्बित था। राजाकी सेनामें सभी योद्धा—

सर्वे ते वैष्णवा वीराः सदा दानपरायणाः।
एकपत्नीव्रतयुताः संयतास्ते प्रियंवदाः॥

'भगवद्भक्त, रणवीर, दीनोंपर दया करके उन्हें दान देनेवाले, एकपत्नीव्रती, सद्बुद्धियुक्त और प्रिय बोलनेवाले थे।' अतएव राजाकी आज्ञा पाकर सभी वीर अर्जुनके साथ लोहा लेनेको तैयार हो गये। घोड़ा पकड़ लिया गया और नीति तथा धर्मशास्त्रके प्रगाढ़ पण्डित राजगुरु ऋषिवर शंख और लिखितके आज्ञानुसार यह भयानक मुनादी करवा दी गयी कि 'अमुक समयतक सभी योद्धा युद्ध-क्षेत्रमें उपस्थित हो जायँ। जो ठीक

समयपर नहीं पहुँचेगा, वह उबलते हुए तैलके कड़ाहेमें डलवा दिया जायगा। यह आज्ञा राजाके पोते, पुत्र और भ्राताओंपर समानरूपसे ही लागू होगी'—

न निर्गच्छति यः कश्चित् कटाहे तैलपूरिते।
पात्यते ज्वलिते घोरे नप्तृपुत्रसहोदराः॥

राजाके सभी सेनानायक, मन्त्री, भ्राता और सुबल, सुरथ, सम तथा सुदर्शन नामके चारों पुत्र रणक्षेत्रकी ओर चल दिये। सबसे छोटे राजकुमारका नाम सुधन्वा था। वीर सुधन्वा अपनी वीर-प्रसविनी जननीसे आज्ञा माँगनेके लिये गया और वहाँ पहुँचकर मातृचरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम कर कहने लगा—'माँ! मैं आज सौभाग्यसे प्रसिद्ध वीर अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये जा रहा हूँ। आप आज्ञा दें ताकि मैं पार्थद्वारा सुरक्षित 'हरि' (घोड़े) को जीतकर ला सकूँ।' वीरमाता भगवान्‌की परम भक्त थीं, उन्हें पता था कि इस बार रणसे पुत्रका वापस लौटना कठिन है। अतएव माताने कहा—

गच्छ पुत्र हरिं युद्धे विजित्य मम सन्निधौ।
हरिं चतुष्पदं त्यक्त्वा तं समानय मुक्तिदम्॥

'बेटा! रणमें जाकर 'हरि' को जीतकर अवश्य मेरे पास ले आ; परंतु लाना मुक्तिदाता हरिको, चार पैरवाले पशुको नहीं।' तेरे प्रतापी पिताने आजतक रणमें बड़े-बड़े वीरोंपर विजय प्राप्त की है, परंतु कंसहन्ता श्रीकृष्णके दर्शन उन्हें अबतक नहीं हुए। आज हे पुत्र! तू हमलोगोंको उन श्रीकृष्णके दर्शन करानेवाला हो। तू आज वही कर्म कर जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हों। तेरे बड़े भाग्य हैं जो आज तू श्रीकृष्णको अपने इन नेत्रोंसे देख सकेगा, परंतु श्रीकृष्णका मिलना बहुत कठिन है। मैं तुझे एक उपाय बतलाती हूँ। भगवान् भक्तवत्सल हैं, उन्होंने अपनी भक्तवत्सलताके

कारण ही कुरुक्षेत्रके भीषण समरमें अर्जुनके रथके घोड़े हाँके थे। आज भी वे अर्जुनकी रक्षाके लिये आ सकते हैं, अतएव तू यदि अर्जुनको रणमें छका सका, उसको व्याकुल कर सका तो श्रीकृष्ण तेरे सामने प्रकट हो सकते हैं। मैंने सुना है, श्रीकृष्ण अपने भक्तको उसी प्रकार नहीं छोड़ सकते, जैसे वनमें गये हुए बछड़ेको छोड़कर गौ घर नहीं लौटती—

स्वभक्तं न त्यजत्येष मनाक् पुत्र मया श्रुतम्।
यथा वनगतं वत्सं त्यक्त्वा नायाति गौस्तथा॥

भगवान् अपने भक्तको विपत्तिमें अकेला नहीं छोड़ते। बेटा! तू उन भक्तवत्सल श्रीकृष्णसे भय न करना, उनसे डरनेवाला जी नहीं सकता। यदि तू डर जायगा तो सब लोग मुझे हँसेंगे कि तेरा पुत्र श्रीकृष्णको देखकर रणसे विमुख हो गया। यदि तू लड़ते-लड़ते रणमें धराशायी होकर वीरोंकी श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होगा तो मुझे उसमें हर्ष होगा। पुत्र! इस बातको याद रखना कि श्रीकृष्णके सामने रणमें मरनेवाला पुरुष वास्तवमें मरता नहीं, वह तो अपनी इक्कीस पीढ़ीका उद्धार करनेवाला होता है।

हरेः किं सम्मुखे पुत्र पतितः पतितो भवेत्।
तेनैव चोद्धृताः सर्वे आत्मना चैकविंशतिः॥

संसारमें उन्हीं माताओंको रोना पड़ता है, जिनके पुत्र-पौत्र भगवान् श्रीहरिकी ओर नहीं जाते।

एक दिन सच्ची माता देवी सुमित्राजीने भी प्रिय पुत्र लक्ष्मणको यही उपदेश दिया था—

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।
राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

माताके सदुपदेशको सुनकर वीर सुधन्वाने जननीको सन्तोष कराते हुए कहा—'माता! आपकी आज्ञानुसार युद्धमें प्रवृत्त होकर जी-जानसे लड़कर हरिको लाऊँगा। पुरुषार्थ करना मेरे अधीन है, फल भगवान्‌के हाथ है; परंतु श्रीकृष्णको देखकर यदि मैं विमुख हो जाऊँ तो न तेरे पेटसे पैदा हुआ कहाऊँ और न मुझे सद्‌गतिकी ही प्राप्ति हो।' धन्य वीर!

तदनन्तर बहिन कुवलासे अनुमति और उत्साह प्राप्त कर सुधन्वा अपनी सती पत्नी प्रभावतीके पास गया, वह पहलेसे ही दीपकयुक्त सुवर्णके थालमें चन्दन-कपूर लिये आरती उतारनेको दरवाजेपर ही खड़ी थी। सतीने बड़े भक्ति-भावसे वीर पतिकी पूजा की, तदनन्तर धैर्यके साथ आरती करती हुई नम्रताके साथ पतिके प्रति प्रेमभरे गुह्य वचन कहने लगी—'हे प्राणनाथ! मैं आपके श्रीकृष्णके दर्शनार्थी मुखकमलका दर्शन कर रही हूँ, परंतु नाथ! मालूम होता है आज आपका एकपत्नीव्रत नष्ट हो जायगा। पर आप जिसपर अनुरक्त होकर उत्साहसे जा रहे हैं, वह स्त्री मेरी बराबरी कभी नहीं कर सकेगी। मैंने आपके सिवा दूसरेकी ओर कभी भूलकर भी नहीं ताका है, परंतु वह 'मुक्ति' नाम्नी रमणी तो पिता, पुत्र सभीके प्रति गमन करनेवाली है। आपके मनमें 'मुक्ति' बस रही है, इसीसे श्रीकृष्णके द्वारा उसके मिलनेकी आशासे आप दौड़े जा रहे हैं। पुरुषोंका चित्त देवरमणियोंकी ओर चला ही जाता है, परंतु आप यह निश्चय रखिये कि श्रीहरिको देखकर उनकी अतुलित मुखछबिके सामने 'मुक्ति' आपको कभी प्रिय नहीं लगेगी; क्योंकि उनके भक्तजन, जो उनकी प्रेम-माधुरीपर अपनेको न्योछावर कर देते हैं, वे मुक्तिकी कभी इच्छा नहीं करते। मुक्ति तो दासीकी तरह चरण-सेवाका अवसर ढूँढ़ती हुई उनके पीछे-पीछे घूमा करती है, परंतु

वे उसकी ओर ताकते ही नहीं। यहाँतक कि हरि स्वयं भी कभी उन्हें मुक्ति प्रदान करना चाहते हैं, तब भी वे उसे ग्रहण नहीं करते। इसीलिये श्रीहरिने उनका गुणगान करते हुए कहा है कि—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। १३)

'मुझमें अनुरक्त भक्तगण मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व—इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंको मेरे देनेपर भी ग्रहण नहीं करते।' अतएव जबतक आप श्रीकृष्णकी अनुपम रूप-माधुरीको नहीं देखते तभीतक मुक्तिकी चाह करते हैं।

इसके सिवा पुरुषोंकी भाँति स्त्री पर-पुरुषोंके पास नहीं जाया करती। नहीं तो आपके चले जानेपर यदि मैं 'मोक्ष' के प्रति चली जाऊँ तो आप क्या कर सकते हैं? परन्तु विवेक नामक अदृश्य पुत्र निरन्तर मेरी रक्षा करता है? जिन स्त्रियोंके विवेक नामक पुत्र नहीं है, वे ही पर-पुरुषके पास जाया करती हैं। मुझे लड़कपनसे ही विवेक-पुत्र प्राप्त है, इसीसे हे आर्य! मुझे मोक्षके पास जानेमें संकोच हो रहा है।

पत्नीके मधुर, मार्मिक वचनोंका उत्तर देते हुए सुधन्वाने कहा—'हे शोभने! जब मैं श्रीकृष्णके साथ लड़नेको जा रहा हूँ तो तुम्हें मोक्षके प्रति जानेसे कैसे रोक सकता हूँ? तुम भी मेरे उत्तम वस्त्र, स्वर्ण-रत्नोंके समूह और इस शरीर तथा चित्तको त्यागकर चली जाओ। मैं तो यह पहलेसे ही जानता था कि तुम 'मोक्ष' के प्रति आसक्त हो। इसीसे तो मैंने प्रत्यक्षमें विवेक-पुत्रके उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं की?'

प्रभावतीने कहा—'प्राणनाथ! आप अर्जुनसे लड़ने जा रहे हैं;

चले। मन्त्रीको बड़ा खेद है; परंतु कोई उपाय नहीं! मन्त्रीने सुधन्वासे अनेक प्रकारसे क्षमा-प्रार्थना कर अपना कर्तव्य निवेदन किया। सुधन्वाने धीरतासे कहा—'मन्त्रिवर! आपको महाराजकी आज्ञाका अवश्य पालन करना चाहिये। श्रीपरशुरामजीने पिताके वचन मानकर माताका मस्तक काट डाला था। मुझे अपनी मृत्युका कोई भय नहीं है। आप निःसंकोच मुझे तैलमें डलवा दीजिये।' सब लोगोंने मन्त्रमुग्धकी तरह सुधन्वाकी बातें सुनीं। चारों ओर लोगोंकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। परंतु सुधन्वा प्रसन्नचित्त है। उसने दिव्य वस्त्र धारण कर, तुलसीकी माला गलेमें पहन ली और भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए वह श्रीकृष्णके प्रति यों कहता हुआ तैलके कड़ाहेमें कूद पड़ा—'हे हरे! हे गोविन्द!! हे भक्त-भय-भंजन!!! मुझे मरनेका तनिक भी भय नहीं है, मैं तो आपके चरणोंमें प्राण देनेको ही तो आया था, परंतु आपका तिरस्कार कर मैंने बीचमें ही जो कामकी सेवा की, इसीसे मालूम होता है मैं आपके प्रत्यक्ष दर्शनसे वंचित रहता हूँ और इसीसे हे प्रभो! सम्भवतः आप मेरी रक्षाके लिये इस समय हाथ नहीं बढ़ा रहे हैं। जो लोग केवल भयसे व्याकुल होकर कष्टमें पड़कर ही आपका स्मरण करते हैं, मालूम होता है उन्हें सुखकी प्राप्ति नहीं होती। भक्त प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी और गोपादिने पहले भी आपका स्मरण किया था, इसीसे विपत्तिके समय आपने उनकी रक्षा की। अन्तकालमें आपका ध्यान करनेसे मनुष्य आपको प्राप्त होता है, इससे हे जनार्दन! मैं आपको प्राप्त तो अवश्य करूँगा, परंतु लोग अवश्य यह कहेंगे कि सुधन्वा वीर होकर भी युद्धसे विमुख होकर कड़ाहेमें जलकर मरा। आपके भक्त वीर अर्जुनको और आपको युद्धक्षेत्रमें बाण-वर्षासे प्रसन्न करके तथा गाण्डीव धनुषके छूटे हुए नुकीले

बाणोंसे खण्ड खण्ड होकर मरता तो कोई चिन्ता नहीं थी, परंतु आज अपराधी चोरकी भाँति मर रहा हूँ। इसलिये यदि आप इस बालकका इस प्रकार मरणको प्राप्त होना अनुचित समझते हैं तो अग्नि-दाहसे बचाकर इस शरीरको अपने चरणोंके सामने गिराइये! मैं तो आपका ही हूँ, आपका ही रहूँगा। आप सब प्रकार समर्थ हैं, लज्जारूपी समुद्रमें पड़ी हुई द्रौपदीका पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्यके सामने आपने वस्त्रावतार धारण कर उद्धार किया था।

प्रभुकी लीला विचित्र है। एक दिन प्रह्लादके लिये प्रभुने अग्निको शीतल कर दिया था। एक दिन इन्द्रादि देवोंका दर्प चूर्ण करनेके लिये दर्पहारीने दावानलकी दाहशक्ति हर ली थी। आज भक्त सुधन्वाको बचानेके लिये भी तैल ऐसा शीतल हो गया जैसा सज्जनोंका चित्त होता है। **'तैलं सुशीतलं जातं सज्जनस्येव मानसम्'**। सुधन्वा प्रेमसे 'गोविन्द, दामोदर, माधव आदि हरिके पवित्र नामोंका कीर्तन करता हुआ तनकी सुधि भूल गया। कड़ाहेमें उसकी प्रेम-समाधि हो गयी। उबलते हुए तैलमें पड़कर भी सुधन्वा जल नहीं रहा है और तैलके ऊपर-ऊपर तैर रहा है, यह देखकर लोगोंके आश्चर्यका पार नहीं रहा। राजा हंसध्वज भी दोनों पुरोहितोंको साथ लिये इससे पहले ही पहुँच गये थे। राजाको बड़ा विस्मय हुआ।

भगवानकी भक्ति और श्रद्धासे रहित केवल तर्क और बुद्धिके अभिमानपर निर्भर करनेवाले घमण्डी पुरोहित शंखने सुधन्वापर संदेह प्रकट करते हुए राजासे कहा कि 'राजन्! क्या बात है? तैल गरम नहीं हुआ या तेरा पुत्र कोई औषध मन्त्र जानता है? इसका मुख प्रफुल्लित कमलकी भाँति कान्तियुक्त होकर तेजसे झलमला रहा है। इसके अंगपर कहीं एक फफोला भी नहीं पड़ा!

हो-न-हो इसमें कुछ-न-कुछ चालाकी है। यदि तैल वास्तवमें गरम होता तो ऐसा कभी नहीं होता। गरम तैलसे मनुष्यका न जलना तो प्रकृतिसे विरुद्ध है।' हाय! धर्मशास्त्रज्ञ ब्राह्मण! आपने अभी यह नहीं जाना कि प्रभु प्रकृतिके स्वामी हैं, उनकी इच्छासे, नहीं-नहीं संकल्पमात्रसे ही असम्भव सम्भव हो जाता है—

मसकहिं करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।

शंखसे नहीं रहा गया, उन्होंने तैलकी परीक्षाके लिये कड़ाहेमें एक नारियल डलवाया। उबलते हुए तैलमें पड़ते ही नारियल तड़ाकसे फूटा, उसके दो टुकड़े हो गये और उछलकर शंख और लिखित दोनों ऋषियोंके माथेमें जाकर जोरसे लगे। मुनि घबरा गये। अब उनकी आँखें खुलीं। भगवान् और उनके भक्तोंका माहात्म्य समझमें आ गया।

मुनिवर शंखने नौकरोंसे पूछा कि उबलते हुए तैलमें सुधन्वाके न जलनेका क्या कारण है; क्या इसने कोई मन्त्र-जप किया था या शरीरमें कोई ऐसी जड़ी बाँध ली, जिससे इसको तैलकी ज्वाला नहीं लगी? नौकरोंने नम्रतासे कहा, 'मुनिवर! हमने तो राजकुमारको कोई भी मन्त्र जपते या औषध बाँधते नहीं देखा। हाँ, कुमारने आर्त होकर उस महामति भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण अवश्य किया था, जिसके स्मरणमात्रसे जीव जन्म-मरणके संकटसे छूट जाते हैं। **'यस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते योनिसंकटात्'** अब भी सुधन्वाके फरकते हुए होठ देखिये, इनसे भगवान् श्रीकृष्णके नामका कैसे सतत स्मरण हो रहा है, यह सुनकर शंखमुनिने अपनेको धिक्कारते हुए कहा कि 'इसको धन्य है, यह महान् साधु है, जो इसने भगवान् विष्णुके स्मरणमें इतना मन लगाया। हम-सरीखे व्यर्थ पण्डितोंको धिक्कार है, जो पाण्डित्यके अभिमानमें भगवान्‌से विमुख हो रहे हैं।' इसी प्रकार

एक दिन व्रजमें भी यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंने अपनी पत्नियोंके अतुलित श्रीकृष्ण-प्रेमसे प्रभावान्वित होकर अपनेको धिक्कार देते हुए कहा था—

धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम्।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे॥
नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी।
यद् वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः॥
अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान्॥
नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः॥
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि॥

(श्रीमद्भा० १०।२३।३९—४३)

'भगवान् श्रीहरिसे विमुख हम ब्राह्मणोंके तीनों जन्मोंको (एक गर्भसे, दूसरा उपनयनसे, तीसरा यज्ञदीक्षासे) ब्रह्मचर्यव्रतको, बड़ी जानकारीको, उत्तम कुलको और यज्ञादि कर्मोंमें हमारी निपुणताको बारम्बार धिक्कार है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवान्‌की माया योगियोंको भी मोहित कर देती है। हा! लोगोंको उपदेश करनेवाले गुरु होकर भी हम आज अपने यथार्थ स्वार्थसे चूक गये। अहो! इन स्त्रियोंमें जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके प्रति कैसी अनन्य-भक्ति है जिससे इन्होंने घरकी सारी ममताको, जो कठिन मृत्यु-पाश है, क्षणभरमें तोड़ डाला। इन स्त्रियोंका न तो हमारी भाँति यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, न इन्होंने गुरुके यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त की, न तप किया, न आत्मज्ञानकी मीमांसा की। न इनमें शौच है और न ये यज्ञादि शुभकर्म ही

करती हैं, तो भी योगेश्वरोंके ईश्वर पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णमें इनकी सुदृढ़ भक्ति है। हमारे सब संस्कार हुए हैं तथा हममें विद्या, विवेक, तप, शौच और यज्ञादि क्रिया भी हैं तथापि बड़े शोककी बात है कि हमलोगोंमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है।'

वास्तवमें बात भी यही सत्य है, बड़ा और बुद्धिमान् वही है जो भगवान्‌के चरणोंका नित्य चिन्तन करता हुआ उनकी शरण रहता है। भक्तराज प्रह्लादने इसीलिये कहा था कि बारह प्रकारके सद्‌गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरणकमलसे विमुख हो तो उसकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने तन, मन, धन, वचन, कर्म और प्राणोंको भगवान्‌के समर्पण कर दिया है। वह भगवद्भक्त चाण्डाल अपने सारे कुलको पवित्र कर सकता है, परंतु वह बहुसम्मानयुक्त ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता। (श्रीमद्भा० ७। ९। ९) अस्तु!

आज शंखमुनिको अपने कियेपर बड़ा पश्चात्ताप है और वह कहते हैं—'मैं इस तप्त तैलके कड़ाहेमें कूदकर मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा। '**प्रायश्चित्तं स्वदेहस्य करिष्ये मरणान्तकम्।**' इतना कहकर मुनि कूदकर तैलके कड़ाहेमें गिर पड़े; परंतु भक्त सुधन्वाकी शुभ भावनासे उबलता हुआ तैल उनके लिये भी शीतल हो गया। मुनिने सुधन्वाको छातीसे लगा गद्‌गद-कण्ठ होकर कहा—

'प्रिय कुमार! तुम महान् साधुश्रेष्ठ क्षत्रिय वीर हो, तुम्हें धन्य है; मैं तो असाधु ब्राह्मण हूँ, मुझ मूर्खने तुम-सरीखे भक्तको उबलते हुए तैलमें गिरवाया। मैं समझ गया, संसारमें उसी मूढ़को नित्य सन्ताप, अभाव और दु:खोंकी प्राप्ति होती है, जो भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण नहीं करता।' जो भाग्यवान् पुरुष सर्वकाम-फलदाता भगवान् गोविन्दका स्मरण करते हैं, वे तो तीनों तापोंसे छूटकर सर्वथा सुखी हो जाते हैं—

ये स्मरन्ति च गोविन्दं सर्वकामफलप्रदम्।
तापत्रयविनिर्मुक्ता जायन्ते दुःखवर्जिताः॥

अग्निमें इतनी शक्ति कहाँ है; जो तुम सरीखे परम वैष्णवको जला सके। जिन सुरासुर-गुरु भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन मुनियोंको भी दुर्लभ है, जिन्होंने अग्नि-शिखासे एक दिन भक्त प्रह्लादकी रक्षा की थी, तुमने प्राणान्तके समय उन्हींका मन-वाणीसे स्मरण कर लिया। पुरुषसिंह! तुम्हारे शरीरका स्पर्श प्राप्त कर आज मेरा यह अधम शरीर भी पवित्र हो गया। पवित्र होनेका इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं है। तीर्थ भी भक्तोंके द्वारा ही तीर्थत्वको प्राप्त होते हैं। महाराज युधिष्ठिरने विदुरसे कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १। १३। १०)

'हे प्रभो! तुम-जैसे भगवद्भक्त स्वयं ही तीर्थरूप हैं। पापियोंके द्वारा कलुषित तीर्थ तुम-सरीखे भक्तोंके ही द्वारा पुनः तीर्थत्वको प्राप्त होते हैं; क्योंकि तुम्हारे हृदयमें गदाधरभगवान् सर्वदा स्थित रहते हैं।' कहा है—

अक्ष्णोः फलं त्वादृशदर्शनं हि
तन्वाः फलं त्वादृशगात्रसंगः।
जिह्वाफलं त्वादृशकीर्तनं हि
सुदुर्लभा भागवता हि लोके॥

'तुम-जैसे भक्तोंके दर्शनमें ही आँखोंकी सफलता है, तुम-जैसे भक्तोंके अंगस्पर्शमें ही शरीरकी सफलता है और तुम जैसे भक्तोंके गुण गानमें ही जीभकी सफलता है; क्योंकि संसारमें भक्तोंके दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं।'

अतएव—

राजानं राजपुत्रांश्च सैन्यं पावय सुव्रत।
उत्तिष्ठ वत्स तैलात्त्वं मां समुद्धर भूपज॥
कृष्णोऽयं पाण्डवस्याथ सारथ्यं प्रकरोति च।
अर्जुनेनाद्य संग्रामं कुरु वीर यथोचितम्॥

'हे पवित्र राजकुमार! हे वत्स! उठ खड़ा हो। तैलसे बाहर निकलकर अपने पिता, चारों बड़े भाई और सारी सेनाको पावन कर, साथ ही मेरा भी उद्धार कर। हे वीर! भगवान् श्रीकृष्ण जिस अपने भक्त अर्जुनका सारथीपन करते हैं, उस अर्जुनके साथ रणांगणमें यथायोग्य युद्ध कर।'

मुनिके साथ सुधन्वा बाहर निकलकर पिताके पास आये। मुनिने सुधन्वाके भक्तिभाव तथा अमित प्रभावकी राजाके सामने बड़ी प्रशंसा की। राजाने पुत्रको हृदयसे लगा लिया और गद्गद-कण्ठसे कल्याणाशीर्वाद देते हुए युद्धके अनुपम अतिथि अर्जुनका यथोचित सत्कार करनेकी आज्ञा दी।

पितृ-आज्ञा प्राप्तकर सुधन्वा सुन्दर रथपर सवार होकर तुरंत युद्धस्थलमें जा पहुँचे। दोनों ओर भाँति-भाँतिके रणवाद्य बज उठे। शंखोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी। वाद्यों और रथ, घोड़े तथा हाथियोंके गर्जनसे पृथ्वी काँप उठी। भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। पाण्डवोंकी ओर महावीर अर्जुनके नेतृत्वमें अपार सेनासहित श्रीकृष्णात्मज प्रद्युम्न, कर्णपुत्र वृषकेतु, कृतवर्मा, सात्यकि, अनुशाल्व आदि प्रसिद्ध वीर हैं। इधर सुधन्वाके नेतृत्वमें राजा हंसध्वजकी विपुल वाहिनी है। श्रीकृष्ण-भक्त वीर क्षत्रिय-कुमार सुधन्वाने क्रमशः वृषकेतु, प्रद्युम्न, कृतवर्मा, सात्यकि और अनुशाल्व आदि सभी वीरोंको पराजय प्रदान कर दी। महासंग्रामके अनन्तर सबको हार मानकर या घायल होकर रणक्षेत्रसे हट

जानेके लिये बाध्य होना पड़ा। अन्तमें स्वयं अर्जुन* सामने आये। दोनों ही ओर भगवान्‌के अनन्य भक्त और अजेय योद्धा हैं। भेद इतना ही है कि अर्जुन बड़े-बड़े युद्धोंके अनुभवी वीर हैं, सुधन्वा अभी नवीन रणबाँकुरे। अर्जुनको अपनी भक्ति और वीरताका कुछ दर्प है; सुधन्वा सर्वथा भगवान्‌के भरोसेपर हैं। इसीसे आज भगवान् यह प्रत्यक्ष दिखला देना चाहते हैं कि न तो भक्तिका कोई ठेकेदार है और न वीरताका ही। सबसे बड़ी बात यह दिखलानी है कि भगवान् श्रीकृष्णके सहायक और साथी न रहनेपर अर्जुन एक बालकसे भी रणमें हार सकते हैं।

अर्जुनने सुधन्वाके सामने आते ही उनसे कहा, 'वीर युवक! मैंने बड़े-बड़े युद्धोंमें विजय प्राप्त की है। महावीर गुरु द्रोण, पितामह भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य और महात्मा कर्णके साथ भी मैंने युद्ध किया है। भगवान् शिव तथा बड़े-बड़े दैत्योंसे भी मैं संग्राममें जूझा हूँ, परंतु तेरे समान रणशूर मुझे कहीं नहीं मिला। मुझे तुझको देखकर जितना आश्चर्य हुआ, उतना और कहीं नहीं हुआ—'**तथा न विस्मयो जातो यथा त्वां वीक्ष्य जायते।**'

सुधन्वा बोले, 'वीरवर! पहलेके युद्धोंमें आपके परम हितकारी भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी सावधानीसे रथपर बैठे हुए सारथिका काम करते थे। आज आप श्रीकृष्णविहीन हैं, इसीसे आपको आश्चर्य हो रहा है। आपने श्रीकृष्णको कैसे त्याग दिया है? कहीं श्रीकृष्णने तो मेरे साथ युद्ध करनेमें आपको नहीं छोड़ दिया? बतलाइये, आप मुझसे युद्ध करनेमें समर्थ हैं या नहीं?' सुधन्वाके वचन सुनकर अर्जुनने क्रोधित हो उनपर बाण-वर्षा आरम्भ की। सुधन्वाने हँसते हुए बात-की-बातमें उनके सारे

---

* पाण्डव अर्जुनका चरित्र हमारी '**आदर्श भक्त**' नामकी पुस्तकमें पढ़िये।

दिव्य बाणोंको काट डाला—'**सुधन्वा ताञ्छरान् दिव्यांश्चिच्छेद प्रहसन्निव।**'

बड़ा भयानक युद्ध हुआ। अर्जुनने अपनी सारी कुशलतासे काम लिया; परंतु सुधन्वाके सामने एक भी नहीं चली। वीर भक्त बालक सुधन्वाकी युद्धनिपुणता और अनवरत बाण-वर्षासे अर्जुन घबरा उठे, उनका सारथि हत होकर गिर पड़ा। यह देखकर सुधन्वाने हँसते हुए कहा—

शरैः क्षतोऽसि पार्थ त्वं पौरुषं क्व गतं च ते।
सर्वज्ञं सारथिं त्यक्त्वा प्राकृतः सारथिः कृतः॥
स्मर स्वसूतं कृष्णाख्यं ममाग्रे पतितो ह्यसि॥

'हे पार्थ! आप मेरे बाणोंसे घायल हो गये हैं, आज आपका पुरुषार्थ कहाँ चला गया? वीरवर! आपने अपने सर्वज्ञ सारथिको छोड़कर बदलेमें साधारण सारथिकी नियुक्ति कर बड़ी भूल की है। आप मेरे सामने युद्धमें गिर पड़े हैं, अतएव शीघ्र अपने श्रीकृष्ण नामक सारथिका स्मरण कीजिये।'

अर्जुनने अपने बायें हाथसे धनुषसहित घोड़ोंकी लगाम पकड़कर लड़ना शुरू किया और मन-ही-मन अपने जीवनाधार, जगदाधार श्रीकृष्णका आर्तभावसे स्मरण किया। स्मरण ही करनेकी देर थी, तुरंत भगवान् श्रीकृष्ण रथपर आ बैठे, अर्जुनसे यह कहते हुए दिखायी दिये कि 'भाई घोड़ोंकी लगाम छोड़ दो'—

'मुंच चाश्वानर्जुनेति व्याजहार वचो हरिः।'

भगवान् वासुदेवको समागत देखकर अर्जुन और सुधन्वा दोनोंने ही प्रणाम किया। अर्जुनको तो हर्ष होना स्वाभाविक ही था, परंतु सुधन्वाके हर्षका रंग कुछ दूसरा ही है। जिस कार्यके लिये माता-पिताकी आज्ञा और प्रिया पत्नीके परामर्शसे रणक्षेत्रमें

आकर अर्जुनको छकाया था, वह शुभ कार्य तो अभी सम्पन्न हुआ है। भगवान्‌की दिव्यरूप-माधुरी और उनकी अतुलनीय भक्तवत्सलताको देखकर सुधन्वा कृतार्थ हो गये। सुधन्वाने मन-ही-मन बारम्बार प्रणाम कर भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार प्रकाश्यमें कहा—

दृष्टस्त्वमसि गोविन्द पाण्डवार्थे समागतः।
सर्वगत्वं मया ज्ञातं त्वदीयं किल केशव॥

'हे गोविन्द! अर्जुनके लिये पधारनेवाले आपके दर्शन मैंने कर लिये। हे केशव! मुझे आपकी सर्वव्यापकताका अनुभव हो गया।' इशारेसे भगवान्‌के प्रति गूढ़ शब्दोंमें इतना-सा कहकर मुसकराते हुए सुधन्वाने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! आपके सारथि श्रीकृष्ण आ गये हैं, अब तो मुझपर विजय प्राप्त करनेके लिये आप कोई प्रतिज्ञा करें।' इन शब्दोंसे अर्जुनको मानो यह समझाया कि श्रीकृष्ण केवल तुम्हारे ही सारथि नहीं हैं, मेरे भी सर्वस्व हैं। तुम्हारी प्रतिज्ञाके लिये अपना पुण्य देकर तुम्हारी रक्षा करेंगे तो मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा केवल संकल्पसे ही कर देंगे। आज जगत् भगवान्‌की यह लीला भी देखेगा।

सुधन्वाकी ललकार सुन अर्जुनने तीन बाण निकालकर प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि 'इन तीनों बाणोंसे तेरे सुन्दर मस्तकको नीचे गिरा दूँगा। यदि मैं ऐसा न कर सकूँ तो मेरे पूर्वज पुण्यहीन होकर नरकमें गिर पड़ें। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है।' अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सुनकर मरणोन्मत्त भक्तवर वीर सुधन्वाने भी हाथ उठाकर घोषणा की कि 'श्रीकृष्णके सम्मुख ही मैं आपके तीनों बाणोंको काट डालूँगा। मैं यदि ऐसा न कर सकूँ तो मुझे घोर गतिकी प्राप्ति हो।' दोनों ओर ही परस्पर-विरोधी प्रतिज्ञाएँ हो गयीं।

निश्चय ही कल्याण होगा। परंतु सावधान! श्रीकृष्णकी कृपासे मैं आपके बाणको अवश्य ही काट दूँगा।' अर्जुनका बाण चला, परंतु वीरवर सुधन्वाने श्रीकृष्णका जप करते हुए तुरंत ही उसे काट डाला। सुधन्वाके द्वारा कटे हुए बाणका आधा भाग पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस बाणके कटते ही सारा चन्द्रमण्डल काँप गया। भक्त सुधन्वाके प्रणकी रक्षा हुई। अब अर्जुनके प्रणकी रक्षा होगी, अतएव भगवत्प्रेरणासे बाणका आधा भाग ऊपरको उठा और उसने सुधन्वाके प्रकाशयुक्त कुण्डलवाले पुरुषार्थके भण्डार सुन्दर मस्तकको तुरंत धड़से अलग कर दिया।

सुधन्वाके मस्तकहीन कबन्धने पाण्डवसेनाको तहस-नहस कर डाला और उनका भाग्यवान् सिर आनन्दके साथ केशव, राम, नृसिंह आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करता हुआ श्रीकृष्णके जगत्पावन चरणकमलोंमें गिर पड़ा।

तच्छिन्नं त्वरितं प्राप्तं शिरः कृष्णपदाम्बुजम्।
जपन् केशव रामेति नृसिंहेति मुदा युतम्॥

भगवान्ने चरणोंमें पड़े हुए सुन्दर सिरको प्रेमसे अपने दोनों हाथोंसे उठा लिया। इतनेमें ही वीर बालक सुधन्वाके मुखसे एक तेजकी ज्योति निकली और सबके देखते-देखते वह तुरंत ही श्रीकृष्णके मुखमें प्रवेश कर गयी। इस घटनाको किसीने नहीं जाना।

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां सुमुखं पश्यता तदा।
मुखाद्विनिर्गतं तेजः प्रविष्टं केशवानने॥
सुधन्वनोऽतिसत्त्वस्य कृष्णो जानाति नेतरः।

बोलो भक्त और उनके प्यारे भगवान्की जय!

आकर अर्जुनको छकाया था, वह शुभ कार्य तो अभी सम्पन्न हुआ है। भगवान्‌की दिव्यरूप-माधुरी और उनकी अतुलनीय भक्तवत्सलताको देखकर सुधन्वा कृतार्थ हो गये। सुधन्वाने मन-ही-मन बारम्बार प्रणाम कर भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार प्रकाश्यमें कहा—

दृष्टस्त्वमसि गोविन्द पाण्डवार्थे समागतः।
सर्वगत्वं मया ज्ञातं त्वदीयं किल केशव॥

'हे गोविन्द! अर्जुनके लिये पधारनेवाले आपके दर्शन मैंने कर लिये। हे केशव! मुझे आपकी सर्वव्यापकताका अनुभव हो गया।' इशारेसे भगवान्‌के प्रति गूढ़ शब्दोंमें इतना-सा कहकर मुसकराते हुए सुधन्वाने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! आपके सारथि श्रीकृष्ण आ गये हैं, अब तो मुझपर विजय प्राप्त करनेके लिये आप कोई प्रतिज्ञा करें।' इन शब्दोंसे अर्जुनको मानो यह समझाया कि श्रीकृष्ण केवल तुम्हारे ही सारथि नहीं हैं, मेरे भी सर्वस्व हैं। तुम्हारी प्रतिज्ञाके लिये अपना पुण्य देकर तुम्हारी रक्षा करेंगे तो मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा केवल संकल्पसे ही कर देंगे। आज जगत् भगवान्‌की यह लीला भी देखेगा।

सुधन्वाकी ललकार सुन अर्जुनने तीन बाण निकालकर प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि 'इन तीनों बाणोंसे तेरे सुन्दर मस्तकको नीचे गिरा दूँगा। यदि मैं ऐसा न कर सकूँ तो मेरे पूर्वज पुण्यहीन होकर नरकमें गिर पड़ें। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है।' अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सुनकर मरणोन्मत्त भक्तवर वीर सुधन्वाने भी हाथ उठाकर घोषणा की कि 'श्रीकृष्णके सम्मुख ही मैं आपके तीनों बाणोंको काट डालूँगा। मैं यदि ऐसा न कर सकूँ तो मुझे घोर गतिकी प्राप्ति हो।' दोनों ओर ही परस्पर-विरोधी प्रतिज्ञाएँ हो गयीं।

दोनों ही महावीर और भगवान्के अनन्य भक्त हैं। दोनों ओरकी सेनाके सभी वीर तथा समस्त देवता एवं ऋषिगण इस आश्चर्यको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो उठे।

सुधन्वाने बाण वर्षासे श्रीकृष्णसहित अर्जुनको घायल करके रथ कुछ तोड़ डाला और बाणोंके कौशलसे वह रथको चक्रके समान घुमाने लगे। तदनन्तर दस बाणोंसे अर्जुनको ढककर एक ऐसा बाण मारा, जिससे अर्जुनका रथ चार सौ हाथ पीछे हट गया। यह देखकर भगवानने अर्जुनसे कहा, 'भाई! तुमने सुधन्वाका पुरुषार्थ देखा? कैसा बाँका वीर है! तुमने मुझसे बिना ही परामर्श किये ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करके अच्छा काम नहीं किया। जयद्रथवधमें कितना कष्ट हुआ था, क्या उस घटनाको तुम भूल गये? जिस वीरने तुम्हारे पैरोंके बलसे दबे हुए रथको एक ही बाणसे चार सौ हाथ पीछे हटा दिया, उसके सामने तुम कैसे जीत सकते हो। मेरी समझसे यह सुधन्वाके आत्यन्तिक 'एकपत्नीव्रत' का महत्त्व है। इस एकपत्नीव्रतमें मैं और तुम दोनों ही बहुत पिछड़े हुए हैं। ऐसी स्थितिमें महान् कष्ट होना निश्चित ही है।'

अर्जुनने कहा, हे गोविन्द! जब आपका शुभागमन हो गया है तब मुझे क्या भय है? मैं निश्चय ही इन तीन बाणोंसे सुधन्वाको रणभूमिमें गिरा दूँगा। अब मेरे लिये महाकष्टकी कोई भी सम्भावना नहीं है। जहाँ आपके हाथमें मेरे जीवन-रथकी लगाम है, वहाँ मेरा कोई कैसे अनिष्ट कर सकता है। अर्जुनने पहला बाण हाथमें लिया, तब सुधन्वाने पुकारकर कहा, 'गोविन्द! जिस प्रकार गोकुलमें गायोंकी रक्षाके लिये आपने गोवर्धन हाथपर उठा लिया था, उसी प्रकार आज अपने भक्त अर्जुनकी रक्षा कीजिये, परंतु स्मरण रहे, मैं भी आपका ही

दासानुदास हूँ।' भगवान्‌ने भक्त सुधन्वाकी कीर्तिपताकाको चिरकालतक स्थायीरूपसे फहरने देने तथा भक्त अर्जुनकी रक्षाके लिये अपना गोवर्धनधारणका पुण्य बाणके साथ संयुक्त कर दिया। कालाग्निके समान अर्जुनका बाण चला, परंतु पुण्यात्मा भक्तवर सुधन्वाने क्षणभरमें उसे बीचमें ही काट डाला। राजा हंसध्वज सेनासमेत प्रसन्न हो गये। पार्थ-बाणके कटते ही पृथ्वी काँपने लगी। देवता आश्चर्यमें डूब गये। भगवान्‌ने सुधन्वाके बल-पौरुष और प्राण-रक्षा-कार्यकी प्रशंसा करते हुए अर्जुनको दूसरा बाण सन्धान करनेकी आज्ञा दी और साथ ही अपने अन्य अनेक पुण्य अर्पण कर दिये। सुधन्वाने कहा—'गोविन्द! धन्य है तुम्हारी लीला! पर याद रहे, यह तुम्हारा दास भी तुम्हारी लीलाओंसे अपरिचित नहीं है।' फिर अर्जुनसे कहा कि 'पार्थ! श्रीकृष्णका स्मरण करके बाण छोड़िये।' अर्जुनका प्रलयकारी भयानक बाण चला, परंतु वीर सुधन्वाने अपने प्रबल पुरुषार्थसे उसको भी बीचमें काट डाला। दूसरे बाणके कटते ही अर्जुन कुछ उदास हो गये और रणभूमिमें हाहाकार मच गया। चारों ओर सुधन्वाके वीरत्वकी प्रशंसा होने लगी। तदनन्तर भगवान्‌ने तीसरा बाण सन्धान करनेकी आज्ञा दी और अपने रामावतारका पुण्य बाणके अर्पण कर दिया। बाणके पिछले भागमें ब्रह्माजी तथा बीचमें कालको जोड़कर नोकमें स्वयं स्थित हो गये, सुधन्वाने कहा, 'भगवन्! तुम मेरा वध करनेके लिये बाणमें स्वयं स्थित हुए हो, यह मैं जान गया हूँ। आओ नाथ! मुझे रणभूमिमें अपने चरणोंका आश्रय देकर कृतार्थ करो। मैं तो यही चाहता था। इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिये और कौन-सा होगा? अर्जुन! आपको धन्य है, जो साक्षात् नारायण आपके लिये केवल अपना पुण्य ही नहीं देते, प्रत्युत स्वयं बाणमें स्थित होते हैं। आपका

दिव्य बाणोंको काट डाला—'**सुधन्वा ताञ्छरान् दिव्यांश्चिच्छेद प्रहसन्निव।**'

बड़ा भयानक युद्ध हुआ। अर्जुनने अपनी सारी कुशलतासे काम लिया; परंतु सुधन्वाके सामने एक भी नहीं चली। वीर भक्त बालक सुधन्वाकी युद्धनिपुणता और अनवरत बाण-वर्षासे अर्जुन घबरा उठे, उनका सारथि हत होकर गिर पड़ा। यह देखकर सुधन्वाने हँसते हुए कहा—

शरैः क्षतोऽसि पार्थ त्वं पौरुषं क्व गतं च ते।
सर्वज्ञं सारथिं त्यक्त्वा प्राकृतः सारथिः कृतः॥
स्मर स्वसूतं कृष्णाख्यं ममाग्रे पतितो ह्यसि॥

'हे पार्थ! आप मेरे बाणोंसे घायल हो गये हैं, आज आपका पुरुषार्थ कहाँ चला गया? वीरवर! आपने अपने सर्वज्ञ सारथिको छोड़कर बदलेमें साधारण सारथिकी नियुक्ति कर बड़ी भूल की है। आप मेरे सामने युद्धमें गिर पड़े हैं, अतएव शीघ्र अपने श्रीकृष्ण नामक सारथिका स्मरण कीजिये।'

अर्जुनने अपने बायें हाथसे धनुषसहित घोड़ोंकी लगाम पकड़कर लड़ना शुरू किया और मन-ही-मन अपने जीवनाधार, जगदाधार श्रीकृष्णका आर्तभावसे स्मरण किया। स्मरण ही करनेकी देर थी, तुरंत भगवान् श्रीकृष्ण रथपर आ बैठे, अर्जुनसे यह कहते हुए दिखायी दिये कि 'भाई घोड़ोंकी लगाम छोड़ दो'—

'मुंच चाश्वानर्जुनेति व्याजहार वचो हरिः।'

भगवान् वासुदेवको समागत देखकर अर्जुन और सुधन्वा दोनोंने ही प्रणाम किया। अर्जुनको तो हर्ष होना स्वाभाविक ही था, परंतु सुधन्वाके हर्षका रंग कुछ दूसरा ही है। जिस कार्यके लिये माता-पिताकी आज्ञा और प्रिया पत्नीके परामर्शसे रणक्षेत्रमें